अध्याय २३

जीवन का चरम लक्ष्य—भगवत्प्रेम

श्रील भक्तिविनोद ठाकुर ने अपने *अमृत-प्रवाह-भाष्य* में तेईसवें अध्याय का सारांश दिया है, जो इस प्रकार है। इस अध्याय में श्री चैतन्य महाप्रभु ने भाव तथा प्रेम के लक्षणों, भगवान् के साथ मूल प्रेम-सम्बन्ध के प्रादुर्भाव तथा इस अवस्था को प्राप्त भक्त के गुणों का वर्णन किया है। इसके बाद वे भगवत्प्रेम के *महाभाव* दशा तक क्रमशः वर्धित होने का वर्णन करते हैं। इसके बाद वे आकर्षण (रति) के पाँच प्रकारों का तथा उनके व्यवहारों का वर्णन करते हैं। वे माधुर्य-प्रेम से प्राप्त होने वाले रस का भी वर्णन करते हैं, जो सर्वोपरि भाव है। माधुर्य-प्रेम की दो श्रेणियाँ हैं—*स्वकीय* तथा *परकीय*। पति तथा पत्नी के बीच का प्रेम-व्यवहार *स्वकीय* कहलाता है, जबकि किन्हीं दो प्रेमियों के बीच का प्रेम-व्यवहार *परकीय* कहलाता है। इस सन्दर्भ में अनेक विवरण दिये गये हैं। कृष्ण के ६४ दिव्य गुणों और श्रीमती राधारानी के २५ दिव्य गुणों का भी वर्णन हुआ है।

तब श्री चैतन्य महाप्रभु भक्ति-रस के योग्य पात्रों का वर्णन करते हैं। उनके मूल स्वभावों तथा भेदों का भी वर्णन हुआ है। महाप्रभु सनातन गोस्वामी को भक्ति के सभी गुह्य सिद्धान्तों के विषय में भी बतलाते हैं। वे गोलोक वृन्दावन का विवरण प्रस्तुत करते हैं, जहाँ भगवान् *हरिवंश* में वर्णित अपनी सनातन लीलाओं में संलग्न रहते हैं। *केश अवतार* के पक्ष तथा विपक्ष का विवरण भी दिया गया है। सारे उपदेश इस अध्याय में हैं।

इस तरह श्री चैतन्य महाप्रभु ने अपना हाथ सनातन गोस्वामी के सिर पर

रखकर उन्हें आशीर्वाद दिया। इससे सनातन को *हरिभक्ति-विलास* आदि पुस्तकों में इन विषयों को वर्णन करने की शक्ति प्राप्त हुई।

चिराददत्तं निज-गुप्त-वित्तं
स्व-प्रेम-नामामृतमत्युदारः ।
आ-पामरं यो विततार गौरः
कृष्णो जनेभ्यस्तमहं प्रपद्ये ॥१॥

चिरादत्तं निज-गुप्त-वित्तं
स्व-प्रेम-नामामृतमत्युदारः ।
आ-पामरं यो विततार गौरः
कृष्णो जनेभ्यस्तमहं प्रपद्ये ॥ १ ॥

चिरात्—चिर काल से; **अदत्तम्**—न दी हुई; **निज-गुप्त-वित्तम्**—अपनी निजी गुह्य सम्पत्ति; **स्व-प्रेम**—अपने प्रेम की; **नाम**—पवित्र नाम के; **अमृतम्**—अमृत; **अति-उदारः**—सर्वाधिक उदार; **आ-पामरम्**—सर्वाधिक अधम लोगों तक भी; **यः**—जिन्होंने; **वितातार**—बाँटा; **गौरः**—श्री गौर सुन्दर; **कृष्णः**—स्वयं भगवान् कृष्ण; **जनेभ्यः**—सामान्य लोगों को; **तम्**—उन्हें; **अहम्**—मैं; **प्रपद्ये**—प्रणाम करता हूँ।

अनुवाद

गौरकृष्ण नाम से विख्यात सर्वाधिक वदान्य पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् ने हर एक को—यहाँ तक कि अधम से अधम व्यक्तियों को भी—अपने प्रेम तथा अपने पवित्र नाम के अमृत-रूप गुह्य खजाना बाँटा। यह इसके पहले कभी भी लोगों को नहीं दिया गया था। अतएव मैं उन्हें सादर नमस्कार करता हूँ।

जय जय गौरचन्द्र जय नित्यानन्द ।
जयाद्वैत-चन्द्र जय गौर-भक्त-वृन्द ॥२॥

जय जय गौरचन्द्र जय नित्यानन्द ।
जयाद्वैत-चन्द्र जय गौर-भक्त-वृन्द ॥ २ ॥

जय जय—जय हो; **गौरचन्द्र**—श्री चैतन्य महाप्रभु की; **जय**—जय हो; **नित्यानन्द**—नित्यानन्द प्रभु की; **जय**—जय हो; **अद्वैत-चन्द्र**—अद्वैत आचार्य की; **जय**—जय हो; **गौर-भक्त-वृन्द**—श्री चैतन्य महाप्रभु के भक्तों की।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु की जय हो! श्री नित्यानन्द प्रभु की जय हो! अद्वैत आचार्य की जय हो! श्री चैतन्य महाप्रभु के समस्त भक्तों की जय हो!

এবে শুন ভক্তি-ফল 'প্রেম'-প্রয়োজন ।
যাহার শ্রবণে হয় ভক্তি-রস-জ্ঞান ॥৩॥

एबे शुन भक्ति-फल 'प्रेम'-प्रयोजन ।
याहार श्रवणे हय भक्ति-रस-ज्ञान ॥ ३ ॥

एबे शुन—अब सुनो; **भक्ति-फल**—प्रेममयी सेवा के अभ्यास का परिणाम; **प्रेम**—भगवत्प्रेम; **प्रयोजन**—जीवन का परम लक्ष्य; **याहार श्रवणे**—जिसका श्रवण करने से; **हय**—होता है; **भक्ति-रस-ज्ञान**—भक्ति के रसों का दिव्य ज्ञान।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने आगे कहा, "हे सनातन, अब भक्ति के फल के बारे में सुनो, जो जीवन का चरम लक्ष्य, भगवत्प्रेम है। यदि कोई व्यक्ति इस विवरण को सुनता है, तो उसे दिव्य भक्ति-रस का ज्ञान प्राप्त हो जाता है।

কৃষ্ণে রতি গাঢ় হৈলে 'প্রেম'-অভিধান ।
কৃষ্ণ-ভক্তি-রসের এই 'স্থায়ি-ভাব'-নাম ॥৪॥

कृष्णे रति गाढ़ हैले 'प्रेम'-अभिधान ।
कृष्ण-भक्ति-रसेर एइ 'स्थायि-भाव'-नाम ॥ ४ ॥

कृष्णे—भगवान् कृष्ण में; **रति**—रति, स्नेह; **गाढ़**—गहरा; **हैले**—जब हो जाता है; **प्रेम-अभिधान**—भगवत्प्रेम कहा जाता है; **कृष्ण-भक्ति-रसेर**—कृष्ण के प्रति प्रेममयी सेवा के रसों का; **एइ**—यह; **स्थायि-भाव-नाम**—स्थाई भाव कहा जाता है।

अनुवाद

"जब कृष्ण के प्रति स्नेह प्रगाढ़ हो जाता है, तो भक्ति में भगवत्प्रेम की प्राप्ति होती है। ऐसी दशा स्थायी भाव कहलाती है, जिसमें कृष्णभक्ति-रस का स्थायी आस्वादन होता है।

शुद्ध-सत्त्व-विशेषात्मा प्रेम-सूर्यांशु-साम्य-भाक् ।
रुचिभिश्चित्त-मसृण्य-कृदसौ भाव उच्यते ॥ ५ ॥

शुद्ध-सत्त्व-विशेषात्मा प्रेम-सूर्यांशु-साम्य-भाक् ।
रुचिभिश्चित्त-मसृण्य-कृदसौ भाव उच्यते ॥ ५ ॥

शुद्ध-सत्त्व—विशुद्ध सत्त्वगुण द्वारा; **विशेष**—विशिष्ट; **आत्मा**—जिसका स्वभाव; **प्रेम**—भगवत्प्रेम; **सूर्य**—सूर्य के समान; **अंशु**—एक किरण; **साम्य-भाक्**—जो समान है; **रुचिभिः**—विभिन्न स्वादों द्वारा; **चित्त**—हृदय को; **मसृण्य**—कोमल; **कृत्**—जो करता है; **असौ**—वह कोमलता; **भावः**—भाव; **उच्यते**—कहलाती है।

अनुवाद

"'जब भक्ति शुद्ध सत्त्व के दिव्य पद पर की जाती है, तो यह कृष्ण-प्रेम रूपी सूर्य की किरण जैसी होती है। उस समय भक्ति विविध आस्वादनों के द्वारा हृदय को मृदु बनाती है। तब मनुष्य भाव में स्थित होता है।

तात्पर्य

यह श्लोक *भक्तिरसामृतसिन्धु* (१.३.१) में आया है।

এ দুই,—ভাবের 'স্বরূপ', 'তটস্থ' লক্ষণ ।
প্রেমের লক্ষণ এবে শুন, সনাতন ॥ ৬ ॥

এ দুই,—ভাবের 'স্বরূপ', 'তটস্থ' লক্ষণ ।
প্রেমের লক্ষণ এবে শুন, সনাতন ॥ ৬ ॥

এइ দুइ—ये दोनों; **भावेर**—भाव के; **स्वरूप**—स्वरूप; **तटस्थ**—तटस्थ; **लक्षण**—लक्षण; **प्रेमेर**—प्रेम के; **लक्षण**—लक्षण; **एबे**—अब; **शुन**—सुनो; **सनातन**—हे सनातन।

अनुवाद

"भाव के दो विविध लक्षण होते हैं—वैधानिक (स्वाभाविक) तथा तटस्थ। हे सनातन, अब तुम मुझसे प्रेम के लक्षण सुनो।

तात्पर्य

शुद्धसत्त्वविशेषात्मा का अर्थ है, "शुद्ध सत्त्व के दिव्य पद पर आसीन"। इस तरह आत्मा समस्त भौतिक कल्मष से शुद्ध हो जाता है और यह पद *स्वरूप-लक्षण* अर्थात् भाव का वैधानिक लक्षण कहलाता है। मनुष्य का हृदय

विविध आस्वादनों से कोमल होता है और उसमें भगवान् की रागानुगा भक्ति करने की लालसा जाग्रत होती है। इसे *तटस्थ लक्षण* कहते हैं।

सम्यँ-मसृणित-स्वान्तो ममत्वातिशयाङ्कितः ।
भावः स एव सान्द्रात्मा बुधैः प्रेमा निगद्यते ॥७॥

सम्यँ-मसृणित-स्वान्तो ममत्वातिशयाङ्कितः ।
भावः स एव सान्द्रात्मा बुधैः प्रेमा निगद्यते ॥७॥

सम्यक्—पूर्ण रूप से; **मसृणित-स्व-अन्तः**—जो हृदय को कोमल बनाता है; **ममत्व**—स्वामित्व की भावना का; **अतिशय-अङ्कितः**—अत्यन्त प्रगाढ़; **भावः**—भाव; **सः**—वह; **एव**—अवश्य; **सान्द्र-आत्मा**—जिसकी प्रकृति अत्यन्त प्रगाढ़ है; **बुधैः**—विद्वानों द्वारा; **प्रेमा**—भगवत्प्रेम; **निगद्यते**—कहा जाता है।

अनुवाद

"'जब वह भाव हृदय को पूर्णरूपेण कोमल बना देता है, भगवान् के प्रति अपनत्व की महान् भावना से समन्वित और अत्यन्त प्रगाढ़ तथा घनीभूत हो जाता है, तो विद्वानों द्वारा वह प्रेम (भगवत्प्रेम) कहलाता है।

तात्पर्य

यह श्लोक *भक्तिरसामृतसिन्धु* (१.४.१) में आया है।

अनन्य-ममता विष्णौ ममता प्रेम-सङ्गता ।
भक्तिरित्युच्यते भीष्म-प्रह्लादोद्धव-नारदैः ॥८॥

अनन्य-ममता विष्णौ ममता प्रेम-सङ्गता ।
भक्तिरित्युच्यते भीष्म-प्रह्लादोद्धव-नारदैः ॥८॥

अनन्य-ममता—अन्य किसी में भी सम्बन्ध का भाव न होकर; **विष्णौ**—भगवान् विष्णु या कृष्ण में; **ममता**—अपनेपन की भावना; **प्रेम-सङ्गता**—प्रेम से युक्त; **भक्तिः**—प्रेममयी सेवा; **इति**—अतः; **उच्यते**—कहलाती है; **भीष्म**—भीष्म द्वारा; **प्रह्लाद**—प्रह्लाद महाराज द्वारा; **उद्धव**—उद्धव द्वारा; **नारदैः**—तथा नारद द्वारा।

अनुवाद

"'जब कोई व्यक्ति भगवान् विष्णु के प्रति गूढ़ अपनत्व का भाव उत्पन्न कर लेता है, अथवा जब कोई विष्णु को ही प्रेम के एकमात्र लक्ष्य

मानता है, तो ऐसी जागृति भीष्म, प्रह्लाद, उद्धव तथा नारद जैसे महापुरुषों द्वारा भक्ति कहलाती है।'

तात्पर्य

यह श्लोक *नारद-पञ्चरात्र* से उद्धृत है और *भक्तिरसामृतसिन्धु* (१.४.२) में आया है।

कोन भाग्ये कोन जीवेर 'श्रद्धा' यदि हय ।
तबे सेई जीव 'साधु-सङ्ग' ये करय ॥९॥

कोन भाग्ये कोन जीवेर 'श्रद्धा' यदि हय ।
तबे सेइ जीव 'साधु-सङ्ग' ये करय ॥ ९ ॥

कोन भाग्ये—सौभाग्यवश; **कोन जीवेर**—किसी जीव को; **श्रद्धा यदि हय**—यदि विश्वास हो जाता है; **तबे**—तब; **सेइ जीव**—वह जीवात्मा; **साधु-सङ्ग**—भक्तों का संग; **ये**—अवश्य; **करय**—करता है।

अनुवाद

"यदि सौभाग्यवश कोई जीव कृष्ण में श्रद्धा उत्पन्न कर लेता है, तो वह भक्तों की संगति करना प्रारम्भ कर देता है।

साधु-सङ्ग हैते हय 'श्रवण-कीर्तन' ।
साधन-भक्त्ये हय 'सर्वानर्थ-निवर्तन' ॥१०॥

साधु-सङ्ग हैते हय 'श्रवण-कीर्तन' ।
साधन-भक्त्ये हय 'सर्वानर्थ-निवर्तन' ॥ १० ॥

साधु-सङ्ग हैते—भक्तों के संग से; **हय**—होता है; **श्रवण-कीर्तन**—श्रवण तथा कीर्तन; **साधन-भक्त्ये**—साधन भक्ति द्वारा; **हय**—होता है; **सर्व**—सभी; **अनर्थ-निवर्तन**—अनर्थों का विनाश।

अनुवाद

"जब भक्तों की संगति से कोई व्यक्ति भक्ति की ओर उन्मुख होता है, तो वह विधि-विधानों का पालन करने से और कीर्तन तथा श्रवण द्वारा सारे अवांछित कल्मष से मुक्त हो जाता है।

অনর্থ-নিবৃত্তি হৈলে ভক্ত্যে 'নিষ্ঠা' হয় ।
নিষ্ঠা হৈতে শ্রবণাদ্যে 'রুচি' উপজয় ॥১১॥

अनर्थ-निवृत्ति हैले भक्त्ये 'निष्ठा' हय ।
निष्ठा हैते श्रवणाद्ये 'रुचि' उपजय ॥ ११ ॥

अनर्थ-निवृत्ति—सभी अनर्थों का निवारण; **हैले**—जब हो जाता है; **भक्त्ये**—भक्ति में; **निष्ठा**—दृढ़ विश्वास; **हय**—हो जाता है; **निष्ठा हैते**—ऐसे दृढ़ विश्वास से; **श्रवण-आद्ये**—श्रवण, कीर्तन आदि में; **रुचि**—रुचि; **उपजय**—उत्पन्न हो जाती है।

अनुवाद

"जब मनुष्य सारे अवांछित कल्मष से मुक्त हो जाता है, तो वह दृढ़ निष्ठा के साथ अग्रसर होता है। जब भक्ति में दृढ़ निष्ठा जाग्रत हो जाती है, तो श्रवण तथा कीर्तन का आस्वादन भी जाग्रत होता है।

রুচি হৈতে ভক্ত্যে হয় 'আসক্তি' প্রচুর ।
আসক্তি হৈতে চিত্তে জন্মে কৃষ্ণে প্রীত্যঙ্কুর ॥১২॥

रुचि हैते भक्त्ये हय 'आसक्ति' प्रचुर ।
आसक्ति हैते चित्ते जन्मे कृष्णे प्रीत्यङ्कुर ॥ १२ ॥

रुचि हैते—ऐसी रुचि से; **भक्त्ये**—भक्ति में; **हय**—होती है; **आसक्ति**—आसक्ति; **प्रचुर**—गहरी; **आसक्ति हैते**—आसक्ति से; **चित्ते**—हृदय में; **जन्मे**—उत्पन्न होता है; **कृष्णे**—कृष्ण के प्रति; **प्रीति-अङ्कुर**—स्नेह का बीज।

अनुवाद

"रुचि जाग्रत होने पर गहरी आसक्ति उत्पन्न होती है और उस आसक्ति से हृदय में कृष्ण-प्रेम का बीज अंकुरित होता है।

সেই 'ভাব' গাঢ় হৈলে ধরে 'প্রেম'-নাম ।
সেই প্রেমা 'প্রয়োজন' সর্বানন্দ-ধাম ॥১৩॥

सेइ 'भाव' गाढ़ हैले धरे 'प्रेम'-नाम ।
सेइ प्रेमा 'प्रयोजन' सर्वानन्द-धाम ॥ १३ ॥

सेइ भाव—वह भाव की दशा; **गाढ़ हैले**—जब प्रगाढ़ हो जाती है; **धरे**—लेती है;

प्रेम-नाम—भगवत्प्रेम नाम; **सेइ प्रेमा**—वह भगवत्प्रेम; **प्रयोजन**—जीवन का परम लक्ष्य; **सर्व-आनन्द-धाम**—समस्त आनन्द का स्रोत।

अनुवाद

"जब ऐसी भावदशा प्रगाढ़ होती है, तो उसे भगवत्प्रेम कहा जाता है। ऐसा प्रेम जीवन का चरम लक्ष्य है तथा समस्त आनन्द का आगार है।

तात्पर्य

श्रील भक्तिविनोद ठाकुर भगवत्प्रेम के इस अंकुरण को एक क्रमिक विधि मानते हैं। बड़े भाग्य से किसी व्यक्ति की भक्ति में रुचि जागती है। अन्ततः उसकी भौतिक कल्मष से रहित शुद्ध भक्ति में रुचि उत्पन्न होने लगती है। ऐसी दशा में वह व्यक्ति भक्तों की संगति करना चाहता है। ऐसी संगति के फलस्वरूप वह भक्ति करने तथा श्रवण एवं कीर्तन में अधिक रुचि दिखाने लगता है। श्रवण तथा कीर्तन में वह जितना ही अधिक आग्रह दिखाता है, उतना ही अधिक वह भौतिक कल्मष से शुद्ध होता जाता है। भौतिक कल्मष से मुक्ति को *अनर्थ-निवृत्ति* कहते हैं अर्थात् अवांछित बातें घटती जाती हैं। भक्ति में विकास की यही परीक्षा है। भक्ति की प्रवृत्ति वास्तव में विकसित कर लेने पर वह अवैध सम्बन्ध, नशा, जुआ खेलना तथा मांसाहार के भौतिक कल्मष से मुक्त हो जाता है। ये प्रारम्भिक लक्षण हैं। जब उसके सारे भौतिक कल्मष दूर हो जाते हैं, तब भक्ति में उसकी दृढ़ निष्ठा जाग्रत होती है। निष्ठा उत्पन्न होने पर रुचि उत्पन्न होती है और उस रुचि से वह भक्ति के प्रति आसक्त होता है। इस आसक्ति के प्रगाढ़ होने पर कृष्ण-प्रेम का बीज फलित होता है। यह अवस्था *प्रीति* या *रति* या *भाव* कहलाती है। जब रति प्रगाढ़ होती है, तब वह भगवत्प्रेम कहलाती है। यह भगवत्प्रेम वस्तुतः जीवन की सर्वोच्च पूर्णता है और समस्त आनन्द का आगार है।

इस तरह भक्तिमय जीवन की दो अवस्थाएँ हैं—*साधन भक्ति* तथा *भावभक्ति*। *साधनभक्ति* विधि-विधानों के पालन द्वारा भक्ति का विकास है। भक्ति सम्पन्न करने के लिए मूल सिद्धान्त श्रद्धा है। इसके अतिरिक्त भक्तों की संगति है और इसके बाद प्रमाणित गुरु द्वारा दीक्षा है। दीक्षा लेने के बाद जब कोई व्यक्ति भक्ति के विधानों का पालन करता है, तो वह समस्त अवांछित

वस्तुओं से मुक्त हो जाता है। इस तरह वह दृढ़ता से स्थिर हो जाता है और क्रमशः भक्ति के प्रति रुचि उत्पन्न कर लेता है। यह रुचि जितनी ही अधिक बढ़ती जाती है, वह भगवान् की उतनी ही अधिक सेवा करना चाहता है। इस तरह वह भगवान् की सेवा में किसी विशिष्ट रस में लग जाता है—ये रस हैं शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य तथा मधुर। ऐसी आसक्ति के फलस्वरूप *भाव* विकसित होता है। भावभक्ति शुद्ध सत्त्व का पद है। ऐसे शुद्ध सत्त्व से मनुष्य का हृदय भक्ति से द्रवित हो उठता है। भावभक्ति भगवत्प्रेम का प्रथम बीज है। शुद्ध प्रेम प्राप्त करने के पूर्व यह भाव स्थिति रहती है। इस भावस्थिति के गहन होने पर इसे *प्रेम-भक्ति* कहते हैं। यह क्रमिक विधि निम्नांकित दो श्लोकों में भी वर्णित है, जो *भक्तिरसामृतसिन्धु* (१.४.१५-१६) में पाये जाते हैं।

आदौ श्रद्धा ततः साधु-सङ्गोऽथ भजन-क्रिया ।
ततोऽनर्थ-निवृत्तिः स्यात्ततो निष्ठा रुचिस्ततः ॥१४॥
अथासक्तिस्ततो भावस्ततः प्रेमाभ्युदञ्चति ।
साधकानामयं प्रेम्णः प्रादुर्भावे भवेत्क्रमः ॥१५॥

आदौ श्रद्धा ततः साधु-सङ्गोऽथ भजन-क्रिया ।
ततोऽनर्थ-निवृत्तिः स्यात्ततो निष्ठा रुचिस्ततः ॥१४॥
अथासक्तिस्ततो भावस्ततः प्रेमाभ्युदञ्चति ।
साधकानामयं प्रेम्णः प्रादुर्भावे भवेत्क्रमः ॥१५॥

आदौ—प्रारम्भ में; **श्रद्धा**—दृढ़ विश्वास, अथवा भौतिक कार्यों से अनासक्ति और आध्यात्मिक प्रगति में रुचि; **ततः**—उसके बाद; **साधु-सङ्गः**—शुद्ध भक्तों का संग; **अथ**—फिर; **भजन-क्रिया**—कृष्ण की प्रेममयी सेवा करना (आध्यात्मिक गुरु का संग तथा भक्तों द्वारा प्रोत्साहित होना ताकि दीक्षा हो सके); **ततः**—फिर; **अनर्थ-निवृत्तिः**—सभी अनावश्यक आदतों का नाश; **स्यात्**—होना चाहिए; **ततः**—तब; **निष्ठा**—दृढ़ निष्ठा; **रुचिः**—रुचि; **ततः**—फिर; **अथ**—तब; **आसक्तिः**—आसक्ति; **ततः**—फिर; **भावः**—भाव या स्नेह; **ततः**—तत्पश्चात्; **प्रेम**—भगवत्प्रेम; **अभ्युदञ्चति**—उत्पन्न होता है; **साधकानाम्**—कृष्णभक्ति का अभ्यास करने वाले भक्तों का; **अयम्**—इस; **प्रेम्णः**—भगवत्प्रेम का; **प्रादुर्भावे**—उदय; **भवेत्**—होता है; **क्रमः**—क्रमपूर्वक।

अनुवाद

"'सर्वप्रथम श्रद्धा होनी चाहिए। तब मनुष्य शुद्ध भक्तों की संगति

करने में रुचि दिखाने लगता है। तत्पश्चात् वह गुरु द्वारा दीक्षित होता है और उसके आदेशानुसार विधि-विधानों का पालन करता है। इस तरह वह समस्त अवांछित आदतों से मुक्त हो जाता है और भक्ति में स्थिर हो जाता है। इसके बाद रुचि तथा आसक्ति उत्पन्न होती है। यह साधन-भक्ति का मार्ग है। धीरे-धीरे भाव गहन होते जाते हैं और अन्त में प्रेम जाग्रत होता है। कृष्णभावनामृत में रुचि रखने वाले भक्त के लिए यही भगवत्प्रेम के क्रमिक विकास की प्रक्रिया है।'

सतां प्रसङ्गान्मम वीर्य-संविदो
भवन्ति हृत्कर्ण-रसायनाः कथाः ।
तज्जोषणादाश्वपवर्ग-वर्त्मनि
श्रद्धा रतिर्भक्तिरनुक्रमिष्यति ॥१६॥

सतां प्रसङ्गान्मम वीर्य-संविदो
भवन्ति हृत्कर्ण-रसायनाः कथाः ।
तज्जोषणादाश्वपवर्ग-वर्त्मनि
श्रद्धा रतिर्भक्तिरनुक्रमिष्यति ॥ १६ ॥

सताम्—भक्तों के; **प्रसङ्गात्**—अन्तरंग संग द्वारा; **मम**—मेरे; **वीर्य-संविदः**—दिव्य गुणों की वार्ताएँ; **भवन्ति**—होती हैं; **हृत्**—हृदय के लिए; **कर्ण**—तथा कानों के लिए; **रस-आयनाः**—मधुरता का स्रोत; **कथाः**—वार्ताएँ; **तत्**—उनके; **जोषणात्**—उचित विकास द्वारा; **आशु**—शीघ्र ही; **अपवर्ग**—मुक्ति के; **वर्त्मनि**—मार्ग पर; **श्रद्धा**—श्रद्धा; **रतिः**—आकर्षण; **भक्तिः**—प्रेम; **अनुक्रमिष्यति**—क्रमपूर्वक आ जायेंगे।

अनुवाद

'"आध्यात्मिक रूप से ईश्वर के सशक्त सन्देश की सटीक चर्चा केवल भक्त-समाज में ही हो सकती है और उस संगति में उसे सुनना बहुत ही आनन्ददायक होता है। भक्तों से सुनने पर उसके लिए दिव्य अनुभव का मार्ग शीघ्र खुल जाता है और धीरे-धीरे उसे दृढ़ श्रद्धा (निष्ठा) प्राप्त होती है, जो कालक्रम से आकर्षण (रति) तथा भक्ति में विकसित होती है।'

तात्पर्य

यह उद्धरण *श्रीमद्भागवत* (३.२५.२५) का है।

याँहार हृदये एइ भावाङ्कुर हय ।
ताँहाते एतेक चिह्न सर्व-शास्त्रे कय ॥ १७॥

याँहार हृदये एइ भावाङ्कुर हय ।
ताँहाते एतेक चिह्न सर्व-शास्त्रे कय ॥ १७॥

याँहार—जिसके; **हृदये**—हृदय में; **एइ**—यह; **भाव-अङ्कुर**—भाव का बीज; **हय**—होता है; **ताँहाते**—उसमें; **एतेक**—ये; **चिह्न**—लक्षण; **सर्व-शास्त्रे**—सभी प्रामाणिक शास्त्र; **कय**—कहते हैं।

अनुवाद

"यदि किसी के हृदय में वास्तव में दिव्य भाव का बीज रहता है, तो वह उसके कर्मों में परिलक्षित होगा। सभी शास्त्रों का यही निर्णय है।

क्षान्तिरव्यर्थ-कालत्वं विरक्तिर्मान-शून्यता ।
आशा-बन्धः समुत्कण्ठा नाम-गाने सदा रुचिः ॥ १८॥
आसक्तिस्तद्गुणाख्याने प्रीतिस्तद्वसति-स्थले ।
इत्यादयोऽनुभावाः स्युर्जात-भावाङ्कुरे जने ॥ १९॥

क्षान्तिरव्यर्थ-कालत्वं विरक्तिर्मान-शून्यता ।
आशा-बन्धः समुत्कण्ठा नाम-गाने सदा रुचिः ॥ १८॥
आसक्तिस्तद्गुणाख्याने प्रीतिस्तद्वसति-स्थले ।
इत्यादयोऽनुभावाः स्युर्जात-भावाङ्कुरे जने ॥ १९॥

क्षान्तिः—क्षमाशीलता; **अव्यर्थ-कालत्वम्**—समय व्यर्थ न गँवाना; **विरक्तिः**—वैराग्य; **मान-शून्यता**—मिथ्या अभिमान का अभाव; **आशा-बन्धः**—आशा; **समुत्कण्ठा**—उत्साह; **नाम-गाने**—पवित्र नामों के गान में; **सदा**—सदैव; **रुचिः**—रुचि; **आसक्तिः**—आसक्ति; **तत्**—भगवान् कृष्ण के; **गुण-आख्याने**—दिव्य गुणों का वर्णन करने में; **प्रीतिः**—प्रीति; **तत्**—उनके; **वसति-स्थले**—निवासस्थान के प्रति (मन्दिर या तीर्थस्थान); **इति**—इस प्रकार; **आदयः**—आदि; **अनुभावाः**—लक्षण; **स्युः**—होता है; **जात**—विकसित; **भाव-अङ्कुरे**—दिव्य भाव का बीज; **जने**—व्यक्ति में।

अनुवाद

"'जब कृष्ण के लिए भावरूपी बीज का अंकुरण होता है, तब मनुष्य के स्वभाव में नौ लक्षण प्रकट होते हैं। ये हैं—क्षमाशीलता, समय को व्यर्थ न गँवाने के प्रति सतर्कता, विरक्ति, मिथ्या मान का अभाव, आशा,

उत्सुकता, भगवान् के पवित्र नाम का कीर्तन करने के लिए रुचि, भगवान् के दिव्य गुणों के वर्णन के प्रति अनुरक्ति, भगवान् के निवासस्थानों यथा मन्दिर या वृन्दावन जैसे तीर्थस्थान के प्रति स्नेह। ये अनुभाव अर्थात् उत्कट भाव के गौण लक्षण कहलाते हैं। ये सब अनुभाव उस व्यक्ति के हृदय में दृष्टिगोचर होते हैं, जिसमें भगवत्प्रेम अंकुरित होना शुरू हो गया होता है।'

तात्पर्य

ये दोनों श्लोक *भक्तिरसामृतसिन्धु* (१.३.२५-२६) में प्राप्त हैं।

एइ नव प्रीत्यङ्कुर याँर चित्ते हय ।
प्राकृत-क्षोभे ताँर क्षोभ नाहि हय ॥२०॥

एइ नव प्रीत्यङ्कुर याँर चित्ते हय ।
प्राकृत-क्षोभे ताँर क्षोभ नाहि हय ॥ २० ॥

एइ—यह; **नव**—नौ; **प्रीति-अङ्कुर**—प्रेम के बीज के फल; **याँर**—जिसके; **चित्ते**—मन में; **हय**—होते हैं; **प्राकृत**—भौतिक; **क्षोभे**—क्षोभ में; **ताँर**—वह; **क्षोभ**—विचलित; **नाहि हय**—नहीं होता।

अनुवाद

"यदि किसी के हृदय में कृष्ण के प्रति प्रेम अंकुरित हो जाता है, तो वह भौतिक वस्तुओं से क्षुब्ध नहीं होता।

तं मोपयातं प्रतियन्तु विप्रा
गङ्गा च देवी धृत-चित्तमीशे ।
द्विजोपसृष्टः कुहकस्तक्षको वा
दशत्वलं गायत विष्णु-गाथाः ॥२१॥

तं मोपयातं प्रतियन्तु विप्रा
गङ्गा च देवी धृत-चित्तमीशे ।
द्विजोपसृष्टः कुहकस्तक्षको वा
दशत्वलं गायत विष्णु-गाथाः ॥ २१ ॥

तम्—उसे; **मा**—मुझे; **उपयातम्**—समर्पित; **प्रतियन्तु**—आप समझिये; **विप्राः**—हे ब्राह्मणों; **गङ्गा**—गंगा माता; **च**—तथा; **देवी**—देवी को; **धृत**—अर्पित; **चित्तम्**—जिसका

मन; **ईशे**—परम भगवान् में; **द्विज-उपसृष्टः**—ब्राह्मण द्वारा रचित; **कुहकः**—कुछ मायावी; **तक्षकः**—नागपक्षी; **वा**—अथवा; **दशतु**—काटने दीजिये; **अलम्**—चिन्ता न करें; **गायत**—गाइये; **विष्णु-गाथाः**—भगवान् विष्णु के पवित्र नाम।

अनुवाद

"'हे ब्राह्मणों, मुझे पूर्णतया शरणागत जीव मानो और भगवान् की प्रतिनिधि, माता गंगा भी मुझे ऐसा ही मानें, क्योंकि मैं पहले ही भगवान् के चरणकमलों को अपने हृदय में आसीन कर चुका हूँ। इस तक्षक को, अथवा ब्राह्मण ने जो कुछ भी इन्द्रजाल रचा है, मुझे तुरन्त काटने दें। मेरी एकमात्र इच्छा यह है कि आप लोग भगवान् विष्णु के कार्यों का गायन करते रहें।'

तात्पर्य

यह श्लोक *श्रीमद्भागवत* (१.१९.१५) का है, जिसे महाराज परीक्षित ने तब कहा था, जब वे शमीक ऋषि के पुत्र शृंगी नामक ब्राह्मण बालक के शाप से बुलाये गये तक्षक से दंशित होने की आशा लगाये गंगा नदी के तट पर बैठे हुए थे। इस शाप का समाचार राजा को सुनाया गया, जो अपनी आसन्न मृत्यु के लिए उद्यत हो गये। अन्त समय में उन्हें देखने के लिए अनेक सन्त, साधु, ब्राह्मण, राजा तथा देवतागण आये। किन्तु महाराज परीक्षित इस तक्षक से डसे जाने से बिल्कुल भयभीत नहीं थे। उन्होंने वहाँ पर एकत्र समस्त महापुरुषों से प्रार्थना की कि वे भगवान् विष्णु के नाम का कीर्तन चालू रखें।

कृष्ण-सम्बन्ध विना काल व्यर्थ नाहि याय ॥२२॥

कृष्ण-सम्बन्ध विना काल व्यर्थ नाहि य्राय ॥ २२॥

कृष्ण-सम्बन्ध विना—कृष्ण के सम्बन्ध के बिना; **काल**—समय; **व्यर्थ**—व्यर्थ; **नाहि य्राय**—नहीं जाना चाहिए।

अनुवाद

"एक क्षण भी नहीं नष्ट करना चाहिए। प्रत्येक क्षण का उपयोग कृष्ण या उनसे सम्बन्धित बातों के लिए करना चाहिए।

तात्पर्य

इस श्लोक में महाराज परीक्षित की व्यग्रता व्यक्त हुई है। वे कहते हैं, "जो

होना है सो हो। इसकी परवाह नहीं है। मुझे तो यह देखना है कि मेरे समय का एक भी क्षण कृष्ण-सम्बन्ध के बिना व्यर्थ न हो।" कृष्णभावनामृत के मार्ग में मनुष्य को सभी प्रकार के अवरोध झेलने पड़ते हैं और यह देखना पड़ता है कि कृष्ण की सेवा के अतिरिक्त जीवन का एक भी क्षण व्यर्थ न जाने पाये।

वाग्भिः स्तुवन्तो मनसा स्मरन्तस्
तन्वा नमन्तोऽप्यनिशं न तृप्ताः ।
भक्ताः श्रवन्नेत्र-जलाः समग्रम्
आयुर्हरेरेव समर्पयन्ति ॥ २३॥

वाग्भिः स्तुवन्तो मनसा स्मरन्तस्
तन्वा नमन्तोऽप्यनिशं न तृप्ताः ।
भक्ताः श्रवन्नेत्र-जलाः समग्रम्
आयुर्हरेरेव समर्पयन्ति ॥ २३॥

वाग्भिः—वाणी द्वारा; **स्तुवन्तः**—परम भगवान् की स्तुति करते हुए; **मनसा**—मन के द्वारा; **स्मरन्तः**—स्मरण करते हुए; **तन्वा**—शरीर द्वारा; **नमन्तः**—प्रणाम करते हुए; **अपि**—यद्यपि; **अनिशम्**—सब समय; **न तृप्ताः**—सन्तुष्ट नहीं होते; **भक्ताः**—भक्तजन; **श्रवत्**—बहाते हुए; **नेत्र-जलाः**—आँखों से आँसु; **समग्रम्**—सम्पूर्ण; **आयुः**—जीवन; **हरेः**—कृष्ण को; **एव**—मात्र; **समर्पयन्ति**—समर्पित कर देते हैं।

अनुवाद

"'वे शब्दों से भगवान् की स्तुति करते हैं। वे मन से नित्य भगवान् का स्मरण करते हैं। वे अपने शरीरों से भगवान् को नमस्कार करते हैं। इतने पर भी वे तुष्ट नहीं होते। ऐसा है शुद्ध भक्तों का स्वभाव। वे अपने नेत्रों से अश्रु बहाते हुए अपना सारा जीवन भगवान् की सेवा में अर्पित कर देते हैं।'

तात्पर्य

यह श्लोक *हरिभक्ति-सुधोदय* का है और *भक्तिरसामृतसिन्धु* (१.३.२९) में आया है।

भुक्ति, सिद्धि, इन्द्रियार्थ तारे नाहि भाय ॥ २४॥

भुक्ति, सिद्धि, इन्द्रियार्थ तारे नाहि भाय ॥ २४॥

भक्ति—भौतिक सुख; **सिद्धि**—योग सिद्धि; **इन्द्रिय-अर्थ**—इन्द्रियों के विषय; **तारे**—उसे; **नाहि भाय**—अच्छे नहीं लगते।

अनुवाद

"भौतिक क्षेत्र में लोग भौतिक भोग, योग-सिद्धि तथा इन्द्रियतृप्ति में रुचि दिखाते हैं। किन्तु भक्तों को ये बातें कदापि रुचिकर नहीं लगतीं।

यो दुस्त्यजान्दार-सुतान्सुहृद्राज्यं हृदि-स्पृशः ।
जहौ युवैव मल-वदुत्तमःश्लोक-लालसः ॥२५॥

यो दुस्त्यजान् दार-सुतान् सुहृद् राज्यं हृदि-स्पृशः ।
जहौ युवैव मल-वदुत्तमःश्लोक-लालसः ॥ २५ ॥

यः—जिन्होंने (भरत महाराज); **दुस्त्यजान्**—त्यागने में कठिन; **दार-सुतान्**—पत्नी तथा सन्तान; **सुहृत्**—मित्र; **राज्यम्**—राजपाट; **हृदि-स्पृशः**—हृदय की गहराईयों को प्रिय; **जहौ**—त्याग दिया; **युवा**—युवावस्था में; **एव**—ही; **मल-वत्**—मल की भाँति; **उत्तमः-श्लोक-लालसः**—पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के दिव्य गुणों, लीलाओं तथा संग से आकर्षित।

अनुवाद

"'राजा भरत उन पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण का सान्निध्य प्राप्त करने के लिए अत्यन्त उत्सुक थे, जो उत्तमश्लोक कहे जाते हैं, क्योंकि उनकी कृपा प्राप्त करने के लिए स्तुतियाँ की जाती हैं। राजा भरत ने अपनी युवावस्था में अपनी आकर्षक पत्नी तथा पुत्रों एवं अपने प्रिय मित्रों तथा वैभवशाली साम्राज्य को उसी तरह छोड़ दिया, जिस तरह मल का विसर्जन करने के बाद उसे त्याग दिया जाता है।'

तात्पर्य

ये *विरक्ति* के लक्षण हैं, जो उस व्यक्ति में पाये जाते हैं, जिसमें भाव उत्पन्न हो चुका हो। यह श्लोक *श्रीमद्भागवत* (५.१४.४३) से उद्धृत है।

'सर्वोत्तम' आपनाके 'हीन' करि माने ॥२६॥

'सर्वोत्तम' आपनाके 'हीन' करि माने ॥ २६ ॥

सर्व-उत्तम—यद्यपि सबसे आगे होते हुए भी; **आपनाके**—स्वयं को; **हीन करि**—सबसे नीचा; **माने**—मानता है।

अनुवाद

"यद्यपि शुद्ध भक्त का स्तर सर्वोपरि होता है, फिर भी वह अपने आपको सबसे हीन (तुच्छ) मानता है।

हरौ रतिं वहन्नेष नरेन्द्राणां शिखा-मणिः ।
भिक्षामटन्नरि-पुरे श्व-पाकमपि वन्दते ॥२७॥

हरौ रतिं वहन्नेष नरेन्द्राणां शिखा-मणिः ।
भिक्षामटन्नरि-पुरे श्व-पाकमपि वन्दते ॥ २७॥

हरौ—पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् हरि में; **रतिम्**—स्नेह; **वहन्**—धारण करके; **एषः**—यह; **नर-इन्द्राणाम्**—सभी राजाओं में; **शिखा-मणिः**—शिरोमणि; **भिक्षाम्**—भीख माँगते; **अटन्**—विचरण करते; **अरि-पुरे**—शत्रुओं के राज्य में भी; **श्व-पाकम्**—पंचम श्रेणी के चाण्डाल; **अपि**—भी; **वन्दते**—वन्दना करते थे।

अनुवाद

"'भरत महाराज सदैव अपने हृदय में कृष्ण के प्रति स्नेह वहन करते थे। यद्यपि भरत महाराज राजाओं के मुकुटमणि थे, फिर भी अपने शत्रुओं की नगरी में घूम-घूमकर भिक्षा माँगते थे। यहाँ तक कि वे तुच्छ जाति के चण्डालों को भी नमस्कार करते थे, जो कुत्तों का मांस भक्षण करते हैं।'

तात्पर्य

यह उद्धरण *पद्मपुराण* का है।

'कृष्ण कृपा करिबेन'—दृढ़ करि' जाने ॥२८॥
'कृष्ण कृपा करिबेन'—दृढ़ करि' जाने ॥ २८॥

कृष्ण—भगवान् कृष्ण; **कृपा करिबेन**—अपनी कृपा करेंगे; **दृढ़ करि'**—दृढ़तापूर्वक; **जाने**—वह मानता है।

अनुवाद

"एक पूर्णतया शरणागत भक्त को सर्वदा आशा रहती है कि भगवान् कृष्ण उस पर कृपालु होंगे। उसमें यह आशा दृढ़ रहती है।

न प्रेमा श्रवणादि-भक्तिरपि वा योगोऽथ वा वैष्णवो
ज्ञानं वा शुभ-कर्म वा किय़दहो सज्जातिरप्यस्ति वा ।
हीनार्थाधिक-साधके त्वयि तथाप्यच्छेद्य-मूला सती
हे गोपी-जन-वल्लभ व्यथयते हा हा मदाशैव माम् ॥२९॥

न प्रेमा श्रवणादि-भक्तिरपि वा योगोऽथ वा वैष्णवो
ज्ञानं वा शुभ-कर्म वा कियदहो सज्जातिरप्यस्ति वा ।
हीनार्थाधिक-साधके त्वयि तथाप्यच्छेद्य-मूला सती
हे गोपी-जन-वल्लभ व्यथयते हा हा मदाशैव माम् ॥ २९ ॥

न—नहीं है; **प्रेमा**—भगवत्प्रेम; **श्रवण-आदि**—श्रवण कीर्तन आदि; **भक्तिः**—भक्ति; **अपि**—तथा; **वा**—अथवा; **योगः**—योगसिद्धि की शक्ति; **अथ वा**—अथवा; **वैष्णवः**—भक्त के लिए उपयुक्त; **ज्ञानम्**—ज्ञान; **वा**—अथवा; **शुभ-कर्म**—पुण्यकर्म; **वा**—अथवा; **कियत्**—थोड़ा भी; **अहो**—हे मेरे प्रभु; **सत्-जातिः**—एक अच्छे कुल में जन्म; **अपि**—भी; **अस्ति**—है; **वा**—या; **हीन-अर्थ-अधिक-साधके**—जो पतित तथा गुणविहीन पर अधिक कृपा दर्शाते हैं; **त्वयि**—आपके प्रति; **तथा-अपि**—फिर भी; **अच्छेद्य-मूला**—जिसका मूल काटा नहीं जा सकता; **सती**—है; **हे**—हे; **गोपी-जन-वल्लभ**—गोपियों के प्रिय; **व्यथयते**—कष्ट देती है; **हा हा**—हाय; **मत्**—मेरी; **आशा**—आशा; **एव**—अवश्य; **माम्**—मुझे।

अनुवाद

"'हे प्रभु, न तो मुझमें आपके लिए प्रेम है, न ही मुझमें कीर्तन तथा श्रवण द्वारा भक्ति करने की योग्यता है। न ही मुझमें वैष्णव की योगशक्ति, ज्ञान या पुण्यकर्म है। न ही मैं उच्च कुल से सम्बन्धित हूँ। इस तरह मुझमें कुछ भी नहीं है। फिर भी हे गोपियों के प्रिय, मेरे हृदय में निरन्तर एक अटूट आशा है, क्योंकि आप अधम से अधम पर दया करने वाले हैं। वही आशा मुझे निरन्तर पीड़ा दे रही है।'

तात्पर्य

यह श्लोक *भक्तिरसामृतसिन्धु* (१.३.३५) में आया है।

समूत्कण्ठा हय़ सदा लालसा-प्रधान ॥३०॥

समुत्कण्ठा हय सदा लालसा-प्रधान ॥ ३० ॥

समुत्कण्ठा—उत्सुकता; **हय**—होती है; **सदा**—हमेशा; **लालसा**—तीव्र लालसा; **प्रधान**—प्रधान।

अनुवाद

"यह उत्सुकता भगवान् का सान्निध्य प्राप्त करने के लिए प्रगाढ़ इच्छा से युक्त है।

त्वच्छैशवं त्रि-भुवनाद्भुतमित्यवेहि
मच्चापलं च तव वा मम वाधिगम्यम् ।
तत्किं करोमि विरलं मुरली-विलासि
मुग्धं मुखाम्बुजमुदीक्षितुमीक्षणाभ्याम् ॥ ३१ ॥

त्वत्—आपकी; **शैशवम्**—शिशु अवस्था; **त्रि-भुवन**—तीन लोकों में; **अद्भुतम्**—अद्भुत; **इति**—ऐसे; **अवेहि**—जानते हैं; **मत्-चापलम्**—मेरी अधीरता; **च**—तथा; **तव**—आपकी; **वा**—या; **मम**—मेरी; **वा**—या; **अधिगम्यम्**—समझनी होगी; **तत्**—वह; **किम्**—क्या; **करोमि**—मैं करूँ; **विरलम्**—एकान्त में; **मुरली-विलासि**—हे बंसी बजाने वाले; **मुग्धम्**—आकर्षक; **मुख-अम्बुजम्**—कमल समान मुख; **उदीक्षितुम्**—सन्तोषपूर्वक देखने के लिए; **ईक्षणाभ्याम्**—आँखों द्वारा।

अनुवाद

"'हे कृष्ण, हे वंशीवादक, आपके शैशव की माधुरी तीनों लोकों में अद्भुत है। मैं आपकी चपलता जानता हूँ और आप मेरी। इसे अन्य कोई नहीं जानता। मैं किसी एकान्त में आपका सुन्दर आकर्षक मुख देखना चाहता हूँ, किन्तु यह हो तो कैसे?'

तात्पर्य

यह श्लोक *कृष्णकर्णामृत* (३२) का है।

नाम-गाने सदा रुचि, लय कृष्ण-नाम ॥ ३२ ॥

नाम-गाने सदा रुचि, लय कृष्ण-नाम ॥ ३२ ॥

नाम-गाने—पवित्र नामों का गान करने में; **सदा**—निरन्तर; **रुचि**—रुचि, आस्वादन; **लय**—लेते हैं; **कृष्ण-नाम**—हरे कृष्ण महामन्त्र।

अनुवाद

"नाम के प्रति गहरी रुचि होने से मनुष्य हरे कृष्ण महामन्त्र का निरन्तर जप करना चाहता है।

रोदन-विन्दु-मरन्द-स्यन्दि-
दृगिन्दीवरादय गोविन्द ।
तव मधुर-स्वर-कण्ठी
गायति नामावलीं बाला ॥ ३३ ॥

रोदन-बिन्दु-मरन्द-स्यन्दि-
दृगिन्दीवराद्य गोविन्द ।
तव मधुर-स्वर-कण्ठी
गायति नामावलीं बाला ॥ ३३ ॥

रोदन-बिन्दु—आँसु; **मरन्द**—अमृत या फूलों के मकरंद जैसे; **स्यन्दि**—बहा रहे हैं; **दृक्-इन्दीवरा**—जिनके कमलनयन; **अद्य**—आज; **गोविन्द**—हे मेरे प्रभु गोविन्द; **तव**—आपके; **मधुर-स्वर-कण्ठी**—जिनकी वाणी अत्यन्त मधुर है; **गायति**—गाती है; **नाम-आवलीम्**—पवित्र नाम; **बाला**—यह युवती (श्री राधिका)।

अनुवाद

"'हे गोविन्द, यह युवती जिसका नाम राधिका है, मधुर स्वर में आपके पवित्र नाम का गायन करती हुई निरन्तर अश्रु बरसा रही है, मानो फूलों से मधु गिर रहा हो।'

तात्पर्य

यह श्लोक *भक्तिरसामृतसिन्धु* (१.३.३८) में पाया जाता है।

कृष्ण-गुणाख्याने हय सर्वदा आसक्ति ॥ ३४ ॥

कृष्ण-गुणाख्याने हय सर्वदा आसक्ति ॥ ३४ ॥

कृष्ण-गुण-आख्याने—कृष्ण के दिव्य गुणों का वर्णन करने में; **हय**—होती है; **सर्वदा**—सदैव; **आसक्ति**—आसक्ति।

अनुवाद

"इस भावदशा में भक्त में भगवान् के दिव्य गुणों का कीर्तन और

वर्णन करने की प्रवृत्ति जाग उठती है। उसे इस विधि में आसक्ति हो जाती है।

मधुरं मधुरं वपुरस्य विभोर्
मधुरं मधुरं वदनं मधुरम् ।
मधु-गन्धि मृदु-स्मितमेतदहो
मधुरं मधुरं मधुरं मधुरम् ॥ ३५ ॥

मधुरम्—मधुर; **मधुरम्**—मधुर; **वपुः**—दिव्य स्वरूप; **अस्य**—उनका; **विभोः**—भगवान् का; **मधुरम्**—मधुर; **मधुरम्**—मधुर; **वदनम्**—मुख; **मधुरम्**—और अधिक मधुर; **मधु-गन्धि**—शहद की सुगन्ध; **मृदु-स्मितम्**—मन्द मुस्कान; **एतत्**—यह; **अहो**—हे प्रभु; **मधुरम्**—मधुर; **मधुरम्**—मधुर; **मधुरम्**—मधुर; **मधुरम्**—और भी अधिक मधुर।

अनुवाद

"'हे प्रभु, कृष्ण का दिव्य शरीर मधुर है और उनका मुख तो उनके शरीर से भी अधिक मधुर है। किन्तु मधु (शहद) की गन्ध के समान उनके मुख की मृदु हँसी और भी मधुर है।'

तात्पर्य

यह श्लोक बिल्वमंगल ठाकुर कृत *कृष्णकर्णामृत* (९२) से है।

कृष्ण-लीला-स्थाने करे सर्वदा वसति ॥ ३६ ॥

कृष्ण-लीला-स्थाने करे सर्वदा वसति ॥ ३६ ॥

कृष्ण-लीला-स्थाने—उस स्थान पर जहाँ कृष्ण ने लीलाएँ की; **करे**—करता है; **सर्वदा**—सदैव; **वसति**—निवास।

अनुवाद

"कृष्ण के भाव में मग्न भक्त सदैव ऐसे स्थान में निवास करता है, जहाँ कृष्ण ने लीलाएँ की थीं।

कदाहं यमुना-तीरे नामानि तव कीर्तयन् ।
उद्बाष्पः पुण्डरीकाक्ष रचयिष्यामि ताण्डवम् ॥ ३७ ॥

कदाहं यमुना-तीरे नामानि तव कीर्तयन् ।
उद्बाष्पः पुण्डरीकाक्ष रचयिष्यामि ताण्डवम् ॥ ३७ ॥

कदा—कब; **अहम्**—मैं; **यमुना-तीरे**—यमुना के किनारे; **नामानि**—पवित्र नामों का; **तव**—आपके; **कीर्तयन्**—कीर्तन करके; **उद्बाष्पः**—अश्रु युक्त; **पुण्डरीक-अक्ष**—हे कमलनयन; **रचयिष्यामि**—मैं रचना करूँगा; **ताण्डवम्**—एक उन्मत्त व्यक्ति की तरह नाचकर।

अनुवाद

"'हे पुण्डरीकाक्ष भगवान्, कब मैं अपनी आँखों में आँसू भरकर यमुना के तट पर आपके नाम का कीर्तन करते हुए भाव में नृत्य करूँगा?'

तात्पर्य

यह श्लोक *भक्तिरसामृतसिन्धु* (१.२.१५६) में आया है।

कृष्णे 'रतिर' चिह्न एई कैलुँ विवरण ।
'कृष्ण-प्रेमेर' चिह्न एबे शुन सनातन ॥ ३८ ॥

कृष्णे 'रतिर' चिह्न एइ कैलुँ विवरण ।
'कृष्ण-प्रेमेर' चिह्न एबे शुन सनातन ॥ ३८ ॥

कृष्णे—कृष्ण के प्रति; **रतिर**—आकर्षण के; **चिह्न**—लक्षण; **एइ**—सभी; **कैलुँ विवरण**—मैंने वर्णन किये; **कृष्ण-प्रेमेर**—भगवान् कृष्ण के लिए प्रेम के; **चिह्न**—चिह्न; **एबे**—अब; **शुन सनातन**—सुनो, हे सनातन।

अनुवाद

"जिस व्यक्ति ने कृष्ण के लिए आकर्षण (भाव) उत्पन्न कर लिया है, ये उसके लक्षण हैं। अब मुझे उस व्यक्ति के लक्षण बताने दो, जिसने सचमुच कृष्ण-प्रेम प्राप्त कर लिया है। हे सनातन, इसे मुझसे सुनो।

याँर चित्ते कृष्ण-प्रेमा करये उदय ।
তাঁর বাক্য, ক্রিয়া, মুদ্রা বিজ্ঞেহ না বুঝয় ॥ ৩৯ ॥

যাঁর চিত্তে কৃষ্ণ-প্রেমা করয়ে উদয় ।
তাঁর বাক্য, ক্রিয়া, মুদ্রা বিজ্ঞেহ না বুঝয় ॥ ৩৯ ॥

याँर चित्ते—जिसके हृदय में; **कृष्ण-प्रेमा**—कृष्ण-प्रेम; **करये उदय**—जाग जाता है; **ताँर**—उसके; **वाक्य**—वचनों को; **क्रिया**—कार्यों को; **मुद्रा**—लक्षणों को; **विज्ञेह**—एक विद्वान भी; **ना बुझय**—नहीं समझ सकता।

अनुवाद

"जो व्यक्ति भगवत्प्रेम को प्राप्त कर चुका है, उसके शब्दों, कार्यों तथा लक्षणों को बड़े से बड़ा विद्वान भी नहीं समझ सकता।

धन्यस्यायं नव-प्रेमा यस्योन्मीलति चेतसि ।
अन्तर्वाणिभिरप्यस्य मुद्रा सुष्ठु सु-दुर्गमा ॥ ४० ॥

धन्यस्यायं नव-प्रेमा यस्योन्मीलति चेतसि ।
अन्तर्वाणिभिरप्यस्य मुद्रा सुष्ठु सु-दुर्गमा ॥ ४० ॥

धन्यस्य—एक महा भाग्यवान व्यक्ति के; **अयम्**—यह; **नवः**—नया; **प्रेमा**—भगवत्प्रेम; **यस्य**—जिसका; **उन्मीलति**—प्रकट हो जाता है; **चेतसि**—हृदय में; **अन्तर्-वाणिभिः**—शास्त्रज्ञ व्यक्तियों द्वारा; **अपि**—भी; **अस्य**—उसके; **मुद्रा**—लक्षण; **सुष्ठु**—अत्यधिक; **सु-दुर्गमा**—समझना कठिन है।

अनुवाद

"'जिस महापुरुष के हृदय में भगवत्प्रेम जाग्रत हो चुका है, उसके कार्यों तथा लक्षणों को बड़े से बड़ा विद्वान भी नहीं समझ सकता।'

तात्पर्य

यह श्लोक *भक्तिरसामृतसिन्धु* (१.४.१७) में पाया जाता है।

एवं-व्रतः स्व-प्रिय-नाम-कीर्त्या
जातानुरागो द्रुत-चित्त उच्चैः ।
हसत्यथो रोदिति रौति गायत्य्
उन्माद-वन्नृत्यति लोक-बाह्यः ॥ ४१ ॥

एवं-व्रतः स्व-प्रिय-नाम-कीर्त्या
जातानुरागो द्रुत-चित्त उच्चैः ।
हसत्यथो रोदिति रौति गायत्य
उन्माद-वन्नृत्यति लोक-बाह्यः ॥ ४१ ॥

एवम्-व्रतः—जब कोई इस प्रकार नाम कीर्तन तथा नृत्य के व्रत में लग जाता है; **स्व**—अपने; **प्रिय**—अति प्रिय; **नाम**—पवित्र नाम के; **कीर्त्या**—कीर्तन द्वारा; **जात**—इस प्रकार विकसित करता है; **अनुरागः**—अनुराग; **द्रुत-चित्तः**—अत्यन्त उत्सुकतापूर्वक; **उच्चैः**—ऊँचे स्वर में; **हसति**—हँसता है; **अथो**—तथा; **रोदिति**—रोता है; **रौति**—विचलित हो जाता है; **गायति**—गाता है; **उन्माद-वत्**—एक पागल की तरह; **नृत्यति**—नाचता है; **लोक-बाह्यः**—बाहरी लोगों की परवाह किये बिना।

अनुवाद

"'जब मनुष्य वास्तव में उन्नत होता है और अपने प्रिय भगवान् के पवित्र नाम का कीर्तन करने में आनन्द का अनुभव करता है, तब वह संक्षोभित होकर उच्च स्वर से भगवन्नाम का कीर्तन करता है। वह बाहरी लोगों की परवाह न करते हुए पागल की तरह हँसता है, रोता है, उत्तेजित होता है और कीर्तन करता है।'

तात्पर्य

यह श्लोक *श्रीमद्भागवत* (११.२.४०) से उद्धृत है।

প্রেমা ক্রমে বাড়ি' হয়——স্নেহ, মান, প্রণয় ।
রাগ, অনুরাগ, ভাব, মহাভাব হয় ॥ ৪২ ॥

प्रेमा क्रमे बाड़ि' हय——स्नेह, मान, प्रणय ।
राग, अनुराग, भाव, महाभाव हय ॥ ४२ ॥

प्रेमा—भगवत्प्रेम; **क्रमे**—क्रमपूर्वक; **बाड़ि'**—बढ़कर; **हय**—हो जाता है; **स्नेह**—स्नेह; **मान**—स्नेह के कारण मान; **प्रणय**—प्रणय; **राग**—राग या आसक्ति; **अनुराग**—अनुराग; **भाव**—भाव; **महा-भाव**—महाभाव; **हय**—हो जाता है।

अनुवाद

"इस तरह भगवत्प्रेम बढ़ता जाता है और वह स्नेह, मान, प्रणय, राग, अनुराग, भाव तथा महाभाव के रूप में प्रकट होता है।

বীজ, ইক্ষু, রস, গুড় তবে খণ্ড-সার ।
শর্করা, সিতা-মিছরি, শুদ্ধ-মিছরি আর ॥ ৪৩ ॥

बीज, इक्षु, रस, गुड़ तबे खण्ड-सार ।
शर्करा, सिता-मिछरि, शुद्ध-मिछरि आर ॥ ४३ ॥

बीज—बीज; **इक्षु**—गन्ने के पौधे; **रस**—रस; **गुड़**—गुड़; **तबे**—फिर; **खण्ड-सार**—चीनी; **शर्करा**—साफ चीनी; **सिता-मिछरि**—मिश्री; **शुद्ध-मिछरि**—शुद्ध मिश्री; **आर**—तथा।

अनुवाद

"इस तरह के विकास की उपमा गन्ने के बीज, गन्ने के पौधे, गन्ने के रस, गुड़, खांड, साफ चीनी, मिश्री और शुद्ध मिश्री से दी जाती है।

इहा यैछे क्रमे निर्मल, क्रमे बाढ़े स्वाद ।
रति-प्रेमादिर तैछे बाड़ये आस्वाद ॥ ४४॥

इहा य्रैछे क्रमे निर्मल, क्रमे बाड़े स्वाद ।
रति-प्रेमादिर तैछे बाड़ये आस्वाद ॥ ४४॥

इहा—यह; **य्रैछे**—जैसे; **क्रमे**—क्रमपूर्वक; **निर्मल**—शुद्ध; **क्रमे**—क्रमपूर्वक; **बाड़े**—बढ़ता है; **स्वाद**—स्वाद; **रति**—रति से; **प्रेम-आदिर**—भगवत्प्रेम आदि का; **तैछे**—इस प्रकार; **बाड़ये**—बढ़ता है; **आस्वाद**—स्वाद।

अनुवाद

"जिस प्रकार चीनी को धीरे-धीरे शुद्ध करते रहने पर उसका स्वाद बढ़ता जाता है, उसी तरह यह समझना चाहिए कि जब भगवत्प्रेम जिसकी उपमा बीज से दी जाती है, रति के स्तर से आगे बढ़ता है, तो उसका स्वाद बढ़ता जाता है।

अधिकारि-भेदे रति——पञ्च परकार ।
शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य, मधुर आर ॥ ४५॥

अधिकारि-भेदे रति——पञ्च परकार ।
शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य, मधुर आर ॥ ४५॥

अधिकारि—अधिकारी के; **भेदे**—भेद के अनुसार; **रति**—रति; **पञ्च परकार**—पाँच प्रकार की है; **शान्त**—शान्त; **दास्य**—दास्य; **सख्य**—सख्य; **वात्सल्य**—वात्सल्य; **मधुर**—माधुर्य प्रेम; **आर**—तथा।

अनुवाद

"इन (स्नेह, मान आदि) दिव्य गुणों से युक्त पात्र के अनुसार रस पाँच प्रकार के हैं—शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य तथा माधुर्य।

तात्पर्य

भक्तिरसामृतसिन्धु में रति का वर्णन इस प्रकार हुआ है :

व्यक्तं मसृणितेवान्तर लक्ष्यते रतिलक्षणम्।
मुमुक्षुप्रभृतीनां चेद् भवेद् एषा रतिर्न हि॥
किन्तु बालचमत्कारकारी तच्चिह्नवीक्षया।
अभिज्ञेन सुबोधोऽयं रत्याभासः प्रकीर्तितः॥

प्रेम-बीज के अंकुरण के वास्तविक लक्षण (रति) इसलिए प्रकट होते हैं, क्योंकि हृदय द्रवित रहता है। जब ऐसे लक्षण ज्ञानी तथा कर्मी में प्रकट हों, तब उन्हें रति के वास्तविक लक्षण नहीं माने जा सकते। भक्ति के ज्ञान से रहित मूर्ख लोग रति के ऐसे लक्षणों की तब भी प्रशंसा करते हैं, जब वे कृष्ण की सेवा करने की आकांक्षा के स्थान पर अन्य किसी वस्तु पर आश्रित होते हैं। किन्तु भक्ति में दक्ष व्यक्ति ऐसे लक्षणों को *रति-आभास* कहता है।

এই পঞ্চ স্থায়ী ভাব হয় পঞ্চ 'রস'।
যে-রসে ভক্ত 'সুখী', কৃষ্ণ হয় 'বশ' ॥৪৬॥

এइ পঞ্চ স্থায়ী ভাব হয় পঞ্চ 'রস'।
য়ে-রসে ভক্ত 'সুখী', কৃষ্ণ হয় 'বশ' ॥৪৬॥

এइ পঞ্চ—ये पाँच प्रकार के दिव्य रस; **स्थायी भाव**—स्थाई दिव्य भाव; **हय**—हो जाते हैं; **पञ्च रस**—पाँच प्रकार के दिव्य रस; **য়ে-রসে**—एक विशिष्ट रस में; **भक्त सुखी**—भक्त सुखी होता है; **कृष्ण**—भगवान् कृष्ण; **हय**—हो जाते हैं; **वश**—वश में।

अनुवाद

"ये पाँचों दिव्य रस स्थायी रूप से विद्यमान रहते हैं। भक्त इनमें से किसी एक के प्रति आकृष्ट हो सकता है और इस तरह वह सुखी हो जाता है। कृष्ण भी ऐसे भक्त की ओर उन्मुख होते हैं और उसके वश में हो जाते हैं।

तात्पर्य

भक्तिरसामृतसिन्धु (२.५.१) में स्थायी भाव का वर्णन इस प्रकार मिलता है :

अविरुद्धान् विरुद्धांश्च भावान् यो वशतां नयन्।
सुराजेव विराजेत स स्थायी भाव उच्यते॥
स्थायी भावोऽत्र स प्रोक्तः श्रीकृष्णविषया रतिः॥

"ये भाव अनुकूल (हँसना आदि) तथा प्रतिकूल (क्रोध आदि) भावों को वश में करने वाले हैं। जब ये भाव राजा के समान बने रहते हैं, तब ये स्थायी भाव कहलाते हैं। कृष्ण के प्रति निरन्तर भावात्मक प्रेम स्थायी भाव कहलाता है।"

प्रेमादिक स्थायि-भाव सामग्री-मिलने ।
कृष्ण-भक्ति रस-रूपे पाय परिणामे ॥ ४७॥

प्रेम-आदिक—शान्त, दास्य आदि से प्रारम्भ होने वाला भगवत्प्रेम; **स्थायि-भाव**—स्थाई भाव; **सामग्री-मिलने**—अन्य सामग्रियों से मिलकर; **कृष्ण-भक्ति**—भगवान् कृष्ण की प्रेममयी सेवा; **रस-रूपे**—दिव्य रसों के रूप में; **पाय**—हो जाते हैं; **परिणामे**—परिवर्तन द्वारा।

अनुवाद

"जब स्थायी भावों (शान्त, दास्य आदि) को अन्य सामग्री के साथ मिला दिया जाता है, तब भगवद्भक्ति रूपान्तरित होकर रसों से युक्त हो जाती है।

तात्पर्य

भक्तिरसामृतसिन्धु (२.१.४-५) में निम्नलिखित परिभाषा दी हुई है :

अथास्याः केशवरतेर्लक्षिताया निगद्यते।
सामग्रीपरिपोषेण परमा रसरूपता॥
विभावैरनुभावश्च सात्त्विकैर्व्यभिचारिभिः।
स्वाद्यत्वं हृदि भक्तानाम् आनीता श्रवणादिभिः।
एषा कृष्णरतिः स्थायी भावो भक्तिरसो भवेत्॥

"जैसाकि पहले कहा जा चुका है, कृष्ण या केशव के प्रति प्रेम रसों से युक्त होकर सर्वोच्च अवस्था को तब प्राप्त होता है, जब इसकी सामग्रियों की पूर्ति हो जाती है। विभाव, अनुभाव, सात्त्विक तथा व्यभिचारी के द्वारा श्रवण तथा कीर्तन में गति आती है और भक्त कृष्ण-प्रेम का आस्वादन कर सकता है। तब कृष्ण के प्रति अनुरक्ति या स्थायी भाव *भक्ति-रस* बन जाता है।

विभाव, अनुभाव, साङ्गिक, व्यभिचारी ।
स्थायि-भाव 'रस' हय एइ चारि मिलि' ॥ ४८ ॥

विभाव, अनुभाव, सात्त्विक, व्यभिचारी ।
स्थायि-भाव 'रस' हय एइ चारि मिलि' ॥ ४८ ॥

विभाव—विशेष भाव; **अनुभाव**—अनुभाव; **सात्त्विक**—सात्त्विक भाव; **व्यभिचारी**—व्याभिचारी भाव; **स्थायि-भाव**—स्थायी भाव; **रस**—रस; **हय**—बन जाते हैं; **एइ चारि**—ये चारों; **मिलि'**—मिलकर।

अनुवाद

"विभाव (विशेष भाव), अनुभाव (अधीनस्थ भाव), सात्त्विक (स्वाभाविक भाव) तथा व्यभिचारी भाव के मिश्रण से स्थायी भाव अधिकाधिक स्वादयुक्त दिव्य रस बन जाता है।

दधि येन खण्ड-मरिच-कर्पूर-मिलने ।
'रसालाख्य' रस हय अपूर्वास्वादने ॥ ४९ ॥

दधि य्रेन खण्ड-मरिच-कर्पूर-मिलने ।
'रसालाख्य' रस हय अपूर्वास्वादने ॥ ४९ ॥

दधि—दही; **य्रेन**—जिस प्रकार; **खण्ड**—चीनी; **मरिच**—काली मिर्च; **कर्पूर**—कपूर से; **मिलने**—मिलकर; **रसाल-आख्य**—स्वादिष्ट लगती है; **रस**—रस; **हय**—बन जाते हैं; **अपूर्व-आस्वादने**—अपूर्व रूप से आस्वादन द्वारा।

अनुवाद

"जब दही में खांड, काली मिर्च तथा कपूर मिला दिये जाते हैं, तो वह अत्यन्त स्वादिष्ट बन जाता है। ठीक वैसे ही जब स्थायी भाव अन्य भाव-लक्षणों से मिलता है, तो वह अपूर्व स्वादिष्ट बन जाता है।

द्विविध 'विभाव',—आलम्बन, उद्दीपन ।
वंशी-स्वरादि—'उद्दीपन', कृष्णादि—'आलम्बन' ॥५०॥

द्विविध 'विभाव',—आलम्बन, उद्दीपन ।
वंशी-स्वरादि—'उद्दीपन', कृष्णादि—'आलम्बन' ॥५०॥

द्वि-विध—दो प्रकार के; **विभाव**—विभाव (विशिष्ट भाव); **आलम्बन**—सहारा; **उद्दीपन**—जागरण; **वंशी-स्वर-आदि**—वंशी के स्वर आदि; **उद्दीपन**—उद्दीपन; **कृष्ण-आदि**—कृष्ण आदि; **आलम्बन**—आलंबन।

अनुवाद

"विभाव के दो प्रकार हैं—एक आलम्बन तथा दूसरा उद्दीपन। कृष्ण की वंशी-ध्वनि उद्दीपन का उदाहरण है और साक्षात् कृष्ण आलम्बन के उदाहरण हैं।

'अनुभाव'—स्मित, नृत्य, गीतादि उद्भास्वर ।
स्तम्भादि—'सात्त्विक' अनुभावेर भितर ॥५१॥

'अनुभाव'—स्मित, नृत्य, गीतादि उद्भास्वर ।
स्तम्भादि—'सात्त्विक' अनुभावेर भितर ॥५१॥

अनुभाव—अधीनस्थ भाव; **स्मित**—मुस्कान; **नृत्य**—नृत्य; **गीत-आदि**—गीत आदि; **उद्भास्वर**—शारीरिक भावों के लक्षण; **स्तम्भ-आदि**—स्तब्ध होना आदि; **सात्त्विक**—स्वाभाविक; **अनुभावेर भितर**—अनुभाव की श्रेणी में।

अनुवाद

"हँसना, नाचना, गाना तथा शरीर के विभिन्न प्रकट लक्षण अनुभाव (अधीनस्थ भाव) के अन्तर्गत आते हैं। स्तम्भ इत्यादि सात्त्विक भावों को अनुभावों के अन्तर्गत माना जाता है।

तात्पर्य

भक्तिरसामृतसिन्धु (२.१.१४) में विभाव की परिभाषा इस प्रकार दी गई है :

तत्र ज्ञेया विभावास्तु रत्यास्वादनहेतवः ।
ते द्विधालम्बना एके तथैवोद्दीपनाः परे ॥

"कृष्ण-प्रेम का आस्वादन कराने वाला कारण विभाव कहलाता है। विभाव की दो कोटियाँ हैं—आलम्बन तथा उद्दीपन।"

अग्निपुराण में कहा गया है कि :

विभाव्यते हि रत्यादिर्यत्र येन विभाव्यते।
विभावो नाम स द्वेधालम्बनोद्दीपनात्मकः॥

"जिससे कृष्ण-प्रेम प्रकट हो वह विभाव कहलाता है। इसके दो विभाग होते हैं—आलम्बन (जिसमें प्रेम प्रकट होता है) तथा उद्दीपन (जिससे प्रेम प्रकट होता है)।"

भक्तिरसामृतसिन्धु (२.१.१६) में आलम्बन के विषय में कहा गया है :

कृष्णश्च कृष्णभक्ताश्च बुधैरालम्बना मताः।
रत्यादेर्विषयत्वेन तथाधारतयापि च॥

"प्रेम का लक्ष्य कृष्ण है और उस प्रेम को धारण करने वाला पात्र कृष्ण का भक्त है। विद्वान लोग दोनों ही को आलम्बन या आधार कहते हैं।" इसी प्रकार *उद्दीपन* का विवरण इस प्रकार दिया गया है :

उद्दीपनास्तु ते प्रोक्ता भावमुद्दीपयन्ति ये।
ते तु श्रीकृष्णचन्द्रस्य गुणाश्चेष्टाः प्रसाधनम्।

"जो वस्तुएँ भावमय प्रेम को उद्दीपित (जागृत) करें, वे उद्दीपन कहलाती हैं। यह उद्दीपन कृष्ण के गुणों तथा कार्यों के साथ-साथ उनकी शृंगार-शैली तथा केशसज्जा द्वारा सम्भव होता है।" (*भक्तिरसामृतसिन्धु* २.१.३०१) *भक्तिरसामृतसिन्धु* (२.१.३०२) भी उद्दीपन के निम्नलिखित अतिरिक्त उदाहण देता है :

स्मिताङ्गसौरभे वंशशृंगनूपुरकम्बवः।
पदाङ्कक्षेत्रतुलसी भक्तद्वासरादयः॥

"कृष्ण की हँसी, उनके दिव्य शरीर की सुगन्धि, उनकी बांसुरी, बिगुल, नूपुर, शंख, चरणों में बने चिह्न, उनका आवास, उनका प्रिय पौधा (तुलसी), उनके भक्त तथा उनकी भक्ति से सम्बन्धित व्रत-उपवास—ये भावमय प्रेम के लक्षणों को उद्दीपित करने वाले हैं।"

भक्तिरसामृतसिन्धु (२.२.१) में अनुभाव का वर्णन इस प्रकार दिया गया है :

अनुभावास्तु चित्तस्थभावानामवबोधकाः ।
ते बहिर्विक्रिया प्रायाः प्रोक्ता उद्भास्वराख्यया ॥

"वे अनेक बाह्य भाव लक्षण या शारीरिक विकृतियाँ जो मन के भावों को सूचित करती हैं और जो *उद्भास्वर* भी कहलाती हैं, *अनुभाव* अर्थात् प्रेम की अधीनस्थ भावमय अभिव्यक्तियाँ हैं। इनमें से कुछ लक्षण हैं—नृत्य करना, गिर जाना, भूमि पर लोटना, जोर-जोर से गाना तथा रोना, शरीर में विकार, जोर-जोर से शब्द करना, अंगड़ाना, दीर्घ निःश्वास, अन्यों की परवाह न करना, लार टपकाना (लालास्राव), उन्मत्त हँसी (अट्टहास), थूकना, हिक्का इत्यादि। ये सभी लक्षण दो विभागों में रखे जाते हैं—*शीत* तथा *क्षेपण*। गाना, अँगड़ाना आदि *शीत* कहलाते हैं एवं नाचना, शारीरिक विकार *क्षेपण* कहलाते हैं।

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर अपने अनुभाष्य में *उद्भास्वर* का वर्णन वैदिक शास्त्रों के आधार पर इस प्रकार करते हैं :

उद्भासन्ते स्वधाम्निति प्रोक्ता उद्भास्वरा बुधैः
नीव्युत्तरीयधम्मिल्लस्रंसनं गात्रमोटनम्
जृम्भा घ्राणस्य फुल्लत्वं निश्वासाद्याश्चते मताः

"भावमय प्रेम में किसी व्यक्ति के बाह्य शरीर में प्रकट होने वाले लक्षणों को विद्वज्जन *उद्भास्वर* कहते हैं। इनमें से अधोवस्त्र की गांठ ढीली होना तथा उत्तरीय वस्त्र एवं केश का बिखरना कुछेक लक्षण हैं। अन्य लक्षण हैं—शारीरिक विकार, अंगड़ाना, नथुनों के अगले भाग का फूलना, तेजी से श्वास चलना, हिचकी आना, गिर जाना तथा भूमि पर लोटना। भावात्मक प्रेम के ये बाह्य प्रदर्शन हैं।" *स्तम्भ* तथा अन्य लक्षणों का वर्णन *मध्यलीला* १४.१६७ में हुआ है।

निर्वेद-हर्षादि—तेत्रिश 'व्यभिचारी' ।
सब मिलि' 'रस' हय चमत्कार-कारी ॥५२॥
निर्वेद-हर्षादि—तेत्रिश 'व्यभिचारी' ।
सब मिलि' 'रस' हय चमत्कार-कारी ॥५२॥

निर्वेद-हर्ष-आदि—निर्वेद, हर्ष आदि; **तेत्रिश**—३३; **व्यभिचारी**—व्यभिचारी; **सब मिलि'**—सब मिलकर; **रस**—रस; **हय**—बन जाते हैं; **चमत्कार-कारी**—आश्चर्य के कारण।

अनुवाद

"निर्वेद, हर्ष इत्यादि अन्य अवयव भी हैं। सब मिलाकर ३३ प्रकार हैं और जब ये सब एकजुट होते हैं, तो रस अत्यन्त चमत्कारी बन जाता है।

तात्पर्य

निर्वेद, हर्ष आदि लक्षणों की व्याख्या मध्यलीला १४.१६७ में हुई है। *भक्तिरसामृतसिन्धु* में *व्यभिचारी भावों* का वर्णन इस प्रकार दिया गया है :

अथोच्यन्ते त्रयस्त्रिंशद्भावा ये व्यभिचारिणः।
विशेषेणाभिमुख्येन चरन्ति स्थायिनं प्रति।
वागंगसत्त्वसूच्या ये ज्ञेयास्ते व्यभिचारिणः॥
सञ्चारयन्ति भावस्य गतिं सञ्चारिणोऽपि ते।
उन्मज्जन्ति निमज्जन्ति स्तायिन्यमृतवारिधौ।
ऊर्मिवद्वर्धयन्त्येनं यान्ति तद्रूपतां च ते॥

संचारी तत्त्व तैंतिस हैं, जिन्हें व्यभिचारी भाव कहा जाता है। ये स्थायी भावों के सहायकों के रूप में आसपास रहते हैं। ये शब्दों द्वारा, शरीर के विभिन्न अंगों में दिख रहे लक्षणों द्वारा तथा हृदय की विशेष दशाओं द्वारा जाने जाते हैं। चूँकि ये स्थायी भावों को गति प्रदान करते हैं, अतएव ये *सञ्चारी* कहलाते हैं। ये संचारी भाव स्थायी भावों में से उठते तथा गिरते रहते हैं, मानों भाव के समुद्र में लहरे हों। फलस्वरूप ये व्यभिचारी कहलाते हैं।

পঞ্চ-বিধ রস——শান্ত, দাস্য, সখ্য, বাত্সল্য ।
মধুর-নাম শৃঙ্গার-রস——সবাতে প্রাবল্য ॥৫৩॥

পঞ্চ-বিধ রস——শান্ত, দাস্য, সখ্য, বাত্সল্য ।
মধুর-নাম শৃঙ্গার-রস——সবাতে প্রাবল্য ॥৫৩॥

पञ्च-विध रस—पाँच प्रकार के रस; **शान्त**—शान्त; **दास्य**—सेवा; **सख्य**—मैत्री; **वात्सल्य**—माता-पिता का स्नेह; **मधुर**—माधुर्य; **नाम**—नामक; **शृङ्गार-रस**—शृंगार रस; **सबाते**—उन सबमें से; **प्राबल्य**—प्रमुख।

अनुवाद

"दिव्य रस पाँच हैं—शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य तथा माधुर्य रस, जिसे शृंगार रस भी कहा जाता है। रसों में माधुर्य रस सर्वोपरि है।

शान्त-रसे शान्ति-रति 'प्रेम' पर्यन्त हय ।
दास्य-रति 'राग' पर्यन्त क्रमेत बाड़य ॥५४॥

शान्त-रसे शान्ति-रति 'प्रेम' पर्य्यन्त हय ।
दास्य-रति 'राग' पर्य्यन्त क्रमेत बाड़य ॥५४॥

शान्त-रसे—शान्त रस में; **शान्ति-रति**—शान्ति में दिव्य आसक्ति; **प्रेम पर्य्यन्त**—भगवत्प्रेम तक; **हय**—होती है; **दास्य-रति**—दास्य में रति; **राग**—स्वाभाविक प्रेम; **पर्य्यन्त**—तक; **क्रमेत**—क्रमपूर्वक; **बाड़य**—बढ़ता जाता है।

अनुवाद

"शान्त रस की स्थिति उस बिन्दु तक बढ़ती जाती है, जहाँ मनुष्य को भगवत्प्रेम में अभिरुचि होने लगती है। दास्य रस क्रमशः भगवान् के रागमय प्रेम (राग) तक बढ़ता जाता है।

सख्य-वात्सल्य-रति पाय 'अनुराग'-सीमा ।
सुबलाद्यের 'भाव' पर्यन্ত প্রেমের মহিমা ॥৫৫॥

सख्य-वात्सल्य-रति पाय 'अनुराग'-सीमा ।
सुबलाद्येर 'भाव' पर्य्यन्त प्रेमेर महिमा ॥५५॥

सख्य—सख्य में; **वात्सल्य**—वात्सल्य में; **रति**—रति; **पाय**—प्राप्त करती है; **अनुराग-सीमा**—अनुराग की सीमा तक; **सुबल-आद्येर**—सुबल आदि मित्रों के; **भाव**—भाव; **पर्य्यन्त**—तक; **प्रेमेर महिमा**—भगवत्प्रेम की महिमा।

अनुवाद

'दास्य रस के बाद सख्य रस तथा वात्सल्य रस आते हैं, जो बढ़ते-बढ़ते अनुराग की सीमा तक पहुँच जाते हैं। सुबल इत्यादि मित्रों में पाये जाने वाले प्रेम की महानता भगवान् के भावमय प्रेम के स्तर तक विस्तृत होती है।

तात्पर्य

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर कहते हैं कि शान्त रस भगवान् के साधारण प्रेम तक बढ़ता है। दास्य रस में भगवत्प्रेम उससे आगे बढ़कर स्नेह, मान (प्रेमाश्रित क्रोध), प्रणय तथा राग तक पहुँच जाता है। इसी प्रकार सख्य रस स्नेह, मान, प्रणय, राग तथा अनुराग तक बढ़ता है। इसी प्रकार वात्सल्य रस में होता है। सुबल जैसे व्यक्ति द्वारा प्रदर्शित सख्य रस की विशेषता यह है कि यह भ्रातृप्रेम से मान, राग, अनुराग तथा अन्त में उस भाव को प्राप्त होता है, जहाँ सारे भावों के लक्षण निरन्तर विद्यमान रहते हैं।

शान्तादि रसेर 'योग', 'वियोग'—दुई भेद ।
सख्य-वात्सल्ये योगादिर अनेक विभेद ॥ ५६॥

शान्तादि रसेर 'योग', 'वियोग'—दुइ भेद ।
सख्य-वात्सल्ये योगादिर अनेक विभेद ॥ ५६ ॥

शान्त-आदि रसेर—शान्त आदि रसों के; **योग**—योग; **वियोग**—वियोग; **दुइ भेद**—दो भेद; **सख्य**—सख्य रस में; **वात्सल्ये**—वात्सल्य स्नेह में; **योग-आदिर**—योग और वियोग के; **अनेक विभेद**—अनेक विभेद हैं।

अनुवाद

"इन पाँचों रसों के दो-दो विभेद होते हैं—योग (मिलन) तथा वियोग (विछोह)। सख्य तथा वात्सल्य रस में योग तथा वियोग इन दोनों के भी अनेकानेक विभेद हैं।

तात्पर्य

भक्तिरसामृतसिन्धु (३.२.९३) में ये विभेद इस प्रकार हैं :

अयोगयोगावेतस्य प्रभेदौ कथितावुभौ

भक्तियोग के रसों में दो अवस्थाएँ होती हैं—*अयोग* तथा *योग*। *अयोग* (*वियोग*) का वर्णन *भक्तिरसामृतसिन्धु* (३.२.९४) में इस प्रकार हुआ है :

सङ्गाभावो हरेर्धीरैरयोग इति कथ्यते।
अयोगे त्वन्मनस्कत्वं तद्गुणाद्यनुसन्धयः।
तत्प्राप्त्युपायचिन्ताद्याः सर्वेषां कथिताः क्रियाः॥

भक्तियोग के विज्ञान में निपुण पण्डितों का कहना है कि जब पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की संगति का अभाव होता है, तब अयोग होता है। अयोग (वियोग) की स्थिति में मन कृष्णभावना से पूरित रहता है और कृष्ण के ही विचारों में पूर्णतया मग्न रहता है। इस अवस्था में भक्त पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के दिव्य गुणों की खोज करता है। कहा जाता है कि अयोग की इस स्थिति में विभिन्न रसों में सारे भक्तगण सदैव यही सोचते रहते हैं कि किस प्रकार कृष्ण की संगति प्राप्त की जाए।

'योग' (मिलन) शब्द का वर्णन *भक्तिरसामृतसिन्धु* (३.२.१२९) में इस प्रकार किया गया है :

कृष्णेन सङ्गमो यस्तु स योग इति कीर्त्यते

"जब कृष्ण से साक्षात् भेंट हो जाय तो उसे योग कहते हैं।"

शान्त तथा दास्य के दिव्य रसों में भी योग तथा वियोग के विभाग पाये जाते हैं, किन्तु उनमें विविधता नहीं होती। योग तथा वियोग—ऐसे ही दो विभेद पाँचों रसों में सदैव विद्यमान रहते हैं। किन्तु सख्य तथा वात्सल्य के दिव्य रसों में योग तथा वियोग के अनेक प्रकार पाये जाते हैं। योग के प्रकारों का वर्णन इस प्रकार हुआ है :

योगोऽपि कथितः सिद्धिस्तुष्टिः स्थितिरिति त्रिधा

"योग (मिलन) तीन प्रकार का होता है—सिद्धि, तुष्टि तथा स्थायित्व।" (*भक्तिरसामृतसिन्धु* ३.२.१२९) अयोग (वियोग) के विभेद इस प्रकार वर्णित हैं :

उत्कण्ठितं वियोगश्चेत्ययोगोऽपि द्विधोच्यते

"अयोग के दो विभाग हैं—उत्कण्ठा तथा वियोग।" (*भक्तिरसामृतसिन्धु* ३.२.९५)

'रूढ़', 'अधिरूढ़' भाव—केवल 'मथुरे'।
महिषी-गणेर 'रूढ़', 'अधिरूढ़' गोपिका-निकरे ॥५७॥

'रूढ़', 'अधिरूढ़' भाव—केवल 'मधुरे'।
महिषी-गणेर 'रूढ़', 'अधिरूढ़' गोपिका-निकरे ॥५७॥

रूढ़—उन्नत; **अधिरूढ़**—अत्यन्त उन्नत; **भाव**—भाव; **केवल**—केवल; **मधुरे**—माधुर्य प्रेम के दिव्य रस में; **महिषी-गणेर**—द्वारका की रानियों का; **रूढ़**—उन्नत; **अधिरूढ़**—अत्यन्त उन्नत; **गोपिका-निकरे**—गोपियों में।

अनुवाद

"केवल शृंगार (मधुर) रस में ही दो भाव-लक्षण मिलते हैं, जिन्हें रूढ़ (उन्नत) तथा अधिरूढ़ (अत्यधिक उन्नत) कहा जाता है। रूढ़ भाव द्वारका की पटरानियों में पाया जाता है और अधिरूढ़ भाव गोपियों में पाया जाता है।

तात्पर्य

अधिरूढ़ भावों की व्याख्या *उज्ज्वल-नीलमणि* (*स्थायी भाव प्रकरण* १७०) में दी गई है :

रूढोक्तेभ्योऽनुभावेभ्यः कामप्याप्ता विशिष्टताम्।
यत्रानुभावा दृश्यन्ते सोऽधिरूढो निगद्यते॥

माधुर्य प्रेम का अत्यन्त मधुर आकर्षण स्नेह, मान, प्रणय, राग, अनुराग भाव तथा महाभाव से होता हुआ वर्धित होता है। महाभाव दशा के अन्तर्गत *रूढ़* तथा *अधिरूढ़* निहित हैं। ये स्तर केवल माधुर्य प्रेम में ही सम्भव हैं। रूढ़ भाव द्वारका में पाया जाता है, जब कि अधिरूढ़ भाव गोपियों में पाया जाता है।

অধিরূঢ়-মহাভাব—দুই ত' প্রকার ।
সম্ভোগে 'মাদন', বিরহে 'মোহন' নাম তার ॥৫৮॥

अधिरूढ़-महाभाव—दुइ त' प्रकार ।
सम्भोगे 'मादन', विरहे 'मोहन' नाम तार ॥५८॥

अधिरूढ़-महाभाव—उत्यधिक उन्नत महाभाव; **दुइ त' प्रकार**—दो प्रकार के हैं; **सम्भोगे**—मिलन में; **मादन**—मादन; **विरहे**—विरह में; **मोहन**—मोहन; **नाम**—नाम; **तार**—उनका।

अनुवाद

"अधिरूढ़ महाभाव के दो प्रकार होते हैं—मादन तथा मोहन। परस्पर मिलन मादन कहलाता है और विरह मोहन कहलाता है।

'मादने'—चुम्बनादि हय अनन्त विभेद ।
'उदघूर्णा', 'चित्र-जल्प'—'मोहने' दुइ भेद ॥५९॥

'मादने'—चुम्बनादि हय अनन्त विभेद ।
'उद्घूर्णा', 'चित्र-जल्प'—'मोहने' दुइ भेद ॥५९॥

मादने—मादन दशा में; **चुम्बन-आदि**—चूमना आदि क्रियाओं के; **हय**—होते हैं; **अनन्त विभेद**—असीमित विभेद; **उद्घूर्णा**—अस्थिरता; **चित्र-जल्प**—अनेक उन्मत्त वार्ताएँ; **मोहने**—मोहन दशा में; **दुइ भेद**—दो भेद।

अनुवाद

"मादन भाव के अन्तर्गत चुम्बन तथा अन्य अनेक लक्षण आते हैं, जिनकी कोई गिनती नहीं है। मोहन अवस्था के दो विभेद हैं—उद्घूर्णा (अस्थायित्व) तथा चित्र-जल्प (पागलों का-सा प्रलाप)।

तात्पर्य

अधिक जानकारी के लिए मध्यलीला १.८७ देखें।

चित्र-जल्पेर दश अङ्ग—प्रजल्पादि-नाम ।
'भ्रमर-गीता'र दश श्लोक ताहाते प्रमाण ॥६०॥

चित्र-जल्पेर दश अङ्ग—प्रजल्पादि-नाम ।
'भ्रमर-गीता'र दश श्लोक ताहाते प्रमाण ॥६०॥

चित्र-जल्पेर—उन्मत्त वार्ताओं के; **दश**—दस; **अङ्ग**—भाग; **प्रजल्प-आदि-नाम**—प्रजल्प इत्यादि नामक; **भ्रमर-गीतार**—राधारानी की भौंरे के साथ वार्ता (*श्रीमद्भागवत,* दसवाँ स्कन्ध, अध्याय ४७) का; **दश श्लोक**—दस श्लोक; **ताहाते**—उस विषय में; **प्रमाण**—प्रमाण।

अनुवाद

"चित्रजल्प के अन्तर्गत दस विभाग हैं, जिन्हें प्रजल्प तथा अन्य नामों से पुकारा जाता है। इसका प्रमाण है श्रीमती राधारानी द्वारा कहे गये दस श्लोक, जो 'भ्रमर-गीत' के नाम से विख्यात हैं।

तात्पर्य

काल्पनिक प्रलाप *चित्रजल्प* कहलाता है, जिसके दस विभेद हैं—प्रजल्प,

परिजल्प, विजल्प, उज्जल्प, संजल्प, अवजल्प, अभिजल्प, आजल्प, प्रतिजल्प तथा सुजल्प।

উদঘূর্ণা, বিবশ-চেষ্টা—দিব্যোন্মাদ-নাম ।
বিরহে কৃষ্ণ-স্ফূর্তি, আপনাকে 'কৃষ্ণ'-জ্ঞান ॥ ৬১ ॥

उद्घूर्णा, विवश-चेष्टा—दिव्योन्माद-नाम ।
विरहे कृष्ण-स्फूर्ति, आपनाके 'कृष्ण'-ज्ञान ॥ ६१ ॥

उद्घूर्णा—अस्थिरता; **विवश-चेष्टा**—गर्वपूर्ण चेष्टा; **दिव्य-उन्माद-नाम**—दिव्य उन्माद नामक; **विरहे**—विरह में; **कृष्ण-स्फूर्ति**—कृष्ण की स्फूर्ति; **आपनाके**—स्वयं को; **कृष्ण-ज्ञान**—कृष्ण मानकर।

अनुवाद

"उद्घूर्णा (अस्थायित्व) तथा विवश-चेष्टा (गर्वपूर्ण कार्य) दिव्य उन्मत्तता के अंग हैं। कृष्ण के विरह में भक्त को कृष्ण के प्राकट्य की अनुभूति होती है और वह अपने आपको कृष्ण सोचने लगता है।

'সম্ভোগ'-'বিপ্রলম্ভ'-ভেদে দ্বিবিধ শৃঙ্গার ।
সম্ভোগের অনন্ত অঙ্গ, নাহি অন্ত তার ॥ ৬২ ॥

'सम्भोग'-'विप्रलम्भ'-भेदे द्विविध शृङ्गार ।
सम्भोगेर अनन्त अङ्ग, नाहि अन्त तार ॥ ६२ ॥

सम्भोग—मिलन के; **विप्रलम्भ**—विरह के; **भेदे**—दो भेदों में; **द्वि-विध शृङ्गार**—दो प्रकार के शृंगार हैं; **सम्भोगेर**—संभोग या मिलन की अवस्था के; **अनन्त अङ्ग**—असीमित भाग; **नाहि**—नहीं; **अन्त**—अन्त; **तार**—उनका।

अनुवाद

"शृंगार के दो विभाग हैं—सम्भोग (मिलन) तथा विप्रलम्भ (वियोग)। सम्भोग स्तर पर अनेक विभेद हैं, जिनका वर्णन कर पाना सम्भव नहीं है।

तात्पर्य

उज्ज्वल नीलमणि (*विप्रलम्भ प्रकरण* ३-४) में विप्रलम्भ का वर्णन इस प्रकार हुआ है :

यूनोरयुक्तयोर्भावो युक्तयोर्वाथ यो मिथः
अभिष्टालिंगनादीनाम् अनवाप्तौ प्रकृष्यते
स विप्रलम्भो विज्ञेयः सम्भोगोन्नतिकारकः ॥
न विना विप्रलम्भेन सम्भोगः पुष्टिमश्नुते।

"जब प्रेमी तथा प्रेमिका मिलते हैं, तो वे *युक्त* कहलाते हैं। इस मिलन के पूर्व वे *अयुक्त* कहलाते हैं। चाहे युक्त हों या अयुक्त, उनमें एक-दूसरे का आलिंगन तथा चुम्बन न कर सकने के कारण उठने वाला प्रेम भाव *विप्रलम्भ* कहलाता है। यह विप्रलम्भ मिलन के समय भावों का पोषण करता है।" इसी तरह *सम्भोग* का वर्णन निम्नलिखित श्लोक में किया गया है, जिसे श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर ने अपने *अनुभाष्य* में वैदिक साहित्य से उद्धत किया है :

दर्शनालिङ्गनादीनाम् आनुकूल्यान्निषेवया।
यूनोरुल्लासमारोहन् भावः सम्भोग ईर्यते।

"एक दूसरे से मिलने तथा आलिंगन करने का उद्देश्य प्रेमी तथा प्रेमिका दोनों को सुख देना होता है। जब यह अवस्था अधिकाधिक उल्लासमयी हो जाती है, तो इससे उत्पन्न भाव सम्भोग कहलाता है।" जाग्रत हो जाने पर सम्भोग की चार कोटियाँ हो जाती हैं :

(१) *पूर्व-राग-अनन्तर*—पूर्व-राग (मिलन के पूर्व की आसक्ति) के बाद सम्भोग को *संक्षिप्त* कहा जाता है।

(२) *मान-अनन्तर*—मान (प्रेमयुक्त क्रोध) के बाद सम्भोग को संकीर्ण कहा जाता है।

(३) *किञ्चिद्-दूरप्रवास-अनन्तर*—कुछ काल तक थोड़ी दूरी पर रहने के बाद सम्भोग *सम्पन्न* कहलाता है।

(४) *सुदूर-प्रवास-अनन्तर*—बहुत दूर रहने के बाद सम्भोग *समृद्धिमान* (पूर्ण) कहलाता है।

जब प्रेमी-प्रेमिका का मिलन स्वप्न में होता है, तो उसके भी यही चार विभाग होते हैं।

'विप्रलम्ब' चतुर्विध—पूर्व-राग, मान ।
प्रवासाख्य, आर प्रेम-वैचित्र्य-आख्यान ॥ ६३ ॥

'विप्रलम्भ' चतुर्विध—पूर्व-राग, मान ।
प्रवासाख्य, आर प्रेम-वैचित्त्य-आख्यान ॥ ६३ ॥

विप्रलम्भ—विरह; **चतुर्-विध**—चार प्रकार का; **पूर्व-राग**—पूर्वराग; **मान**—मान; **प्रवास-आख्य**—प्रवास नामक; **आर**—तथा; **प्रेम-वैचित्त्य**—प्रेम वैचित्त्य; **आख्यान**—नामक।

अनुवाद

"विप्रलम्भ के चार विभाग होते हैं—पूर्व-राग, मान, प्रवास तथा प्रेमवैचित्त्य।

तात्पर्य

उज्ज्वल नीलमणि (*विप्रलम्भ प्रकरण* ५) में पूर्व-राग का वर्णन हुआ है :

रतिर्या संगमात् पूर्वं दर्शनश्रवणादिजा।
तयोरुन्मीलति प्राज्ञैः पूर्वरागः स उच्यते॥

"जब प्रेमी तथा प्रेमिका में मिलने के पूर्व देखने, सुनने इत्यादि से उत्पन्न आसक्ति विभाव तथा अनुभाव जैसे चार घटकों के मिश्रण से अत्यन्त आस्वाद्य बन जाती है, तो उसे *पूर्वराग* कहते हैं।"

मान का वर्णन उज्जवल नीलमणि (*विप्रलम्भ प्रकरण* ६८) में भी मिलता है :

दम्पतयोर्भाव एकत्र सतोरप्यनुरक्तयोः।
स्वाभिष्टाश्लेषवीक्षादि निरोधी मान उच्यते॥

"*मान* शब्द प्रेमी तथा प्रेमिकाओं द्वारा अनुभव किये गये भाव का सूचक है, चाहे वे एक स्थान में हों या अलग-अलग। यह भाव उन्हें एक दूसरे को देखने तथा आलिंगन करने से रोकता है, यद्यपि वे एक दूसरे के प्रति अनुरक्त रहते हैं।"

प्रवास की व्याख्या *उज्जवल नीलमणि* (*विप्रलम्भ प्रकरण* १३९) में भी निम्न प्रकार से हुई है :

पूर्वसङ्गतयोर्यूनोर्भवेद् देशान्तरादिभिः ।
व्यवधानं तु यत् प्राज्ञैः स प्रवास इतीर्यते ॥

"*प्रवास* उन दो प्रेमियों के वियोग का सूचक है, जो पहले घनिष्ठतापूर्वक सम्बन्धित थे। यह वियोग उनके भिन्न-भिन्न स्थानों में रहने के कारण होता है।"

इसी प्रकार *प्रेमवैचित्त्य* की व्याख्या *उज्जवल नीलमणि* (*विप्रलम्भ प्रकरण* १३४) में की गई है :

प्रियस्य सन्निकर्षेऽपि प्रेमोत्कर्षस्वभावतः ।
या विशेषधियार्तिस्तत् प्रेमवैचित्त्यमुच्यते ॥

"*प्रेमवैचित्त्य* उस प्रचुर प्रेम का सूचक है, जो प्रेमी के उपस्थित होते हुए भी वियोग के भय से दुःख लाता है।"

রাধিকাদ্যে 'পূর্ব-রাগ' প্রসিদ্ধ 'প্রবাস', 'মানে' ।
'প্রেম-বৈচিত্ত্য' শ্রী-দশমে মহিষী-গণে ॥ ৬৪ ॥

राधिकाद्ये 'पूर्व-राग' प्रसिद्ध 'प्रवास', 'माने' ।
'प्रेम-वैचित्त्य' श्री-दशमे महिषी-गणे ॥ ६४ ॥

राधिकाद्ये—श्रीमती राधारानी तथा अन्य गोपियों में; **पूर्व-राग**—मिलन से पूर्व की भावनाएँ; **प्रसिद्ध**—प्रसिद्ध; **प्रवास माने**—प्रवास तथा मान भी; **प्रेम-वैचित्त्य**—वियोग के भय की भावनाएँ; **श्री-दशमे**—दसवें स्कन्ध में; **महिषी-गणे**—रानियों में।

अनुवाद

"चार प्रकार के वियोग में से तीन (पूर्वराग, प्रवास तथा मान) श्रीमती राधारानी तथा गोपियों में प्रसिद्ध हैं। द्वारका में पटरानियों में प्रेमवैचित्त्य का भाव अत्यन्त प्रमुख है।

কুররি বিলপসি ত্বং বীত-নিদ্রা ন শেষে
স্বপিতি জগতি রাত্র্যামীশ্বরো গুপ্ত-বোধঃ ।
বয়মিব সখি কচ্চিদগাঢ়-নির্বিদ্ধ-চেতা
নলিন-নয়ন-হাসোদার-লীলেক্ষিতেন ॥ ৬৫ ॥

कुररि विलपसि त्वं वीत-निद्रा न शेषे
स्वपिति जगति रात्र्यामीश्वरो गुप्त-बोधः ।

वयमिव सखि कच्चिद्गाढ़-निर्विद्ध-चेता
नलिन-नयन-हासोदार-लीलेक्षितेन ॥ ६५ ॥

कुररि—हे सखी कुररी; **विलपसि**—रो रही हो; **त्वम्**—तुम; **वीत-निद्रा**—निद्रा रहित; **न**—नहीं; **शेषे**—विश्राम; **स्वपिति**—सोते हैं; **जगति**—संसार में; **रात्र्याम्**—रात को; **ईश्वरः**—भगवान् कृष्ण; **गुप्त-बोधः**—जिनकी चेतना गुप्त है; **वयम्**—हम; **इव**—जैसे; **सखि**—हे सखी; **कच्चित्**—क्या; **गाढ़**—गहरे; **निर्विद्ध-चेताः**—हृदय में भेदन; **नलिन-नयन**—कमल सदृश नेत्रों वाले की; **हास**—मुस्कान; **उदार**—उदार; **लीला-ईक्षितेन**—आमोदपूर्ण दृष्टि द्वारा।

अनुवाद

"'हे सखी कुररी, अब तो रात्रि हो गई है और श्रीकृष्ण सोये हुए हैं। तुम न तो सोयी हो, न विश्राम कर रही हो, अपितु विलाप कर रही हो। क्या मैं यह मान लूँ कि तुम भी हमारी ही तरह कमलनेत्रों वाले कृष्ण की हासयुक्त उदार चंचल चितवन से प्रभावित हो? यदि ऐसा है, तो तुम्हारा हृदय बुरी तरह से बिंध चुका है। क्या इसीलिए तुम निद्राविहीन विलाप के चिह्न प्रकट कर रही हो?'

तात्पर्य

यह उद्धरण *श्रीमद्भागवत* (१०.९०.१५) का है और कृष्ण की रानियों द्वारा बोला गया है। यद्यपि रानियाँ कृष्ण के साथ थीं, किन्तु फिर भी वे सोच रही थीं कि कहीं उनका संग छूट न जाए।

ব্রজেন্দ্র-নন্দন কৃষ্ণ——নায়ক-শিরোমণি ।
নায়িকার শিরোমণি——রাধা-ঠাকুরাণী ॥ ৬৬ ॥

व्रजेन्द्र-नन्दन कृष्ण——नायक-शिरोमणि ।
नायिकार शिरोमणि——राधा-ठाकुराणी ॥ ६६ ॥

व्रजेन्द्र-नन्दन कृष्ण—महाराज नन्द के पुत्र, भगवान् कृष्ण; **नायक-शिरोमणि**—सभी नायकों में सर्वश्रेष्ठ; **नायिकार शिरोमणि**—सभी नायिकाओं में सर्वश्रेष्ठ; **राधा-ठाकुराणी**—श्रीमती राधारानी।

अनुवाद

"पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण, जो कि नन्द महाराज के पुत्र के रूप

में प्रकट हुए, अपने सारे व्यवहारों में श्रेष्ठ नायक हैं। इसी प्रकार श्रीमती राधारानी अपने व्यवहारों में सर्वोपरि नायिका हैं।

नायकानां शिरो-रत्नं कृष्णस्तु भगवान्स्वयम् ।
यत्र नित्यतया सर्वे विराजन्ते महा-गुणाः ॥ ६७ ॥

नायकानां शिरो-रत्नं कृष्णस्तु भगवान् स्वयम् ।
यत्र नित्यतया सर्वे विराजन्ते महा-गुणाः ॥ ६७ ॥

नायकानाम्—सभी नायकों के; **शिरः-रत्नम्**—शिरोमणि; **कृष्णः**—भगवान् कृष्ण; **तु**—परन्तु; **भगवान् स्वयम्**—स्वयं पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्; **यत्र**—जिनमें; **नित्यतया**—नित्य रूप से; **सर्वे**—सभी; **विराजन्ते**—रहते हैं; **महा-गुणाः**—दिव्य गुण।

अनुवाद

"'कृष्ण तो स्वयं पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् हैं और समस्त नायकों के शिरोमणि हैं। कृष्ण में सारे दिव्य उत्तम गुण स्थायी रूप से विराजते हैं।'

तात्पर्य

यह श्लोक *भक्तिरसामृतसिन्धु* (२.१.१७) में भी आया है।

देवी कृष्ण-मयी प्रोक्ता राधिका पर-देवता ।
सर्व-लक्ष्मी-मयी सर्व-कान्तिः सम्मोहिनी परा ॥ ६८ ॥

देवी कृष्ण-मयी प्रोक्ता राधिका पर-देवता ।
सर्व-लक्ष्मी-मयी सर्व-कान्तिः सम्मोहिनी परा ॥ ६८ ॥

देवी—जो तीव्रता से दीप्तिमान होती है; **कृष्ण-मयी**—भगवान् कृष्ण से अभिन्न; **प्रोक्ता**—कहलाती है; **राधिका**—श्रीमती राधारानी; **पर-देवता**—सर्वाधिक पूजनीया; **सर्व-लक्ष्मी-मयी**—सभी लक्ष्मियों में सर्वोपरि; **सर्व-कान्तिः**—जिनमें समस्त कान्ति विद्यमान है; **सम्मोहिनी**—जिनका चरित्र भगवान् कृष्ण को पूर्ण रूप से मोहित कर देता है; **परा**—पराशक्ति।

अनुवाद

"'दिव्य देवी श्रीमती राधारानी तो भगवान् कृष्ण की साक्षात् प्रतिमूर्ति हैं। वे समस्त लक्ष्मियों की केन्द्रबिन्दु हैं। वे सर्वाकर्षक भगवान् को आकृष्ट करने के लिए समस्त आकर्षण से युक्त हैं। वे भगवान् की आदि अन्तरंगा शक्ति हैं।'

तात्पर्य

यह श्लोक *बृहद्-गौतमीय-तन्त्र* में पाया जाता है। इसकी व्याख्या के लिए *आदिलीला* ४.८३-९५ देखें।

अनन्त कृष्णेर गुण, चौषट्टि—प्रधान ।
एक एक गुण शुनि' जुड़ाय भक्त-काण ॥ ६९॥
अनन्त कृष्णेर गुण, चौषट्टि—प्रधान ।
एक एक गुण शुनि' जुड़ाय भक्त-काण ॥ ६९॥

अनन्त—असीमित; **कृष्णेर**—भगवान् कृष्ण के; **गुण**—गुण; **चौषट्टि**—६४; **प्रधान**—मुख्य; **एक एक**—एक-एक करके; **गुण**—गुण; **शुनि'**—सुनकर; **जुड़ाय**—सन्तुष्ट होते हैं; **भक्त-काण**—भक्तों के कान।

अनुवाद

"भगवान् कृष्ण के दिव्य गुण अनन्त हैं, जिनमें से चौंसठ प्रधान माने जाते हैं। इन गुणों का क्रमशः श्रवण करने मात्र से भक्तों के कान तृप्त हो जाते हैं।

अयं नेता सु-रम्याङ्गः सर्व-सल्लक्षणान्वितः ।
रुचिरस्तेजसा युक्तो बलीयान्वयसान्वितः ॥७०॥
अयं नेता सु-रम्याङ्गः सर्व-सल्लक्षणान्वितः ।
रुचिरस्तेजसा युक्तो बलीयान् वयसान्वितः ॥ ७०॥

अयम्—यह (कृष्ण); **नेता**—परम नायक; **सु-रम्य-अङ्गः**—सर्वाधिक सुन्दर दिव्य शरीर से युक्त; **सर्व-सत्-लक्षण**—सभी शुभ देहचिह्नों से; **अन्वितः**—युक्त; **रुचिरः**—आँखों को आनन्द देने वाली कान्ति से युक्त; **तेजसा**—समस्त शक्ति के साथ; **युक्तः**—युक्त; **बलीयान्**—अत्यन्त शक्तिशाली; **वयस-अन्वितः**—यौवन से युक्त।

अनुवाद

"'नायक शिरोमणि कृष्ण का दिव्य शरीर अत्यन्त सुन्दर है। उनका शरीर सभी शुभ लक्षणों से युक्त है। यह शरीर अत्यन्त तेजयुक्त है और आँखों को अत्यन्त सुहावना लगता है। उनका शरीर बलवान तथा यौवन से पूर्ण (किशोर) है।

तात्पर्य

यह श्लोक तथा इसके आगे के छह श्लोक *भक्तिरसामृतसिन्धु* (२.१.२३-२९) में भी आये हैं।

विविधाद्भुत-भाषा-वित्सत्य-वाक्यः प्रियंवदः ।
वावदूकः सु-पाण्डित्यो बुद्धिमान्प्रतिभान्वितः ॥७१॥

विविधाद्भुत-भाषा-वित् सत्य-वाक्यः प्रियं-वदः ।
वावदूकः सु-पाण्डित्यो बुद्धिमान्प्रतिभान्वितः ॥७१॥

विविध—अनेक; **अद्भुत**—अद्भुत; **भाषा-वित्**—भाषाओं के ज्ञाता; **सत्य-वाक्यः**—जिनके वचन सत्य होते हैं; **प्रियम्-वदः**—जो अत्यन्त प्रिय वचन बोलते हैं; **वावदूकः**—बोलने में वाक्पटु; **सु-पाण्डित्यः**—अत्यन्त विद्वान; **बुद्धि-मान्**—बुद्धिमान; **प्रतिभा-अन्वितः**—प्रतिभावान।

अनुवाद

"'कृष्ण सारी अद्भुत भाषाओं के वेत्ता हैं। वे सत्यवादी तथा मधुरभाषी हैं। वे बोलने में चतुर (वाक्पटु) हैं और अत्यन्त बुद्धिमान, विद्वान तथा प्रतिभावान हैं।

विदग्धश्चतुरो दक्षः कृत-ज्ञः सु-दृढ़-व्रतः ।
देश-काल-सुपात्र-ज्ञः शास्त्र-चक्षुः शुचिर्वशी ॥७२॥

विदग्धश्चतुरो दक्षः कृत-ज्ञः सु-दृढ़-व्रतः ।
देश-काल-सुपात्र-ज्ञः शास्त्र-चक्षुः शुचिर्वशी ॥७२॥

विदग्धः—कलात्मक आनन्द आस्वादन में दक्ष; **चतुरः**—चतुर; **दक्षः**—निपुण; **कृत-ज्ञः**—कृतज्ञ; **सु-दृढ़-व्रतः**—दृढ़ संकल्प; **देश**—स्थान के; **काल**—समय; **सु-पात्र**—पात्र के; **ज्ञः**—ज्ञाता; **शास्त्र-चक्षुः**—शास्त्रों में दक्ष; **शुचिः**—अत्यन्त साफ-सुथरे; **वशी**—संयमी।

अनुवाद

"'कृष्ण कलात्मक भोग में अत्यन्त पटु हैं। वे अत्यन्त चतुर, दक्ष, कृतज्ञ तथा अपने व्रत पर दृढ़ रहने वाले हैं। वे देश, काल तथा पात्र के अनुसार आचरण करना जानते हैं और शास्त्रों तथा प्रामाणिक ग्रन्थों के माध्यम से देखते हैं। वे अत्यन्त पवित्र तथा आत्मसंयमी हैं।

स्थिरो दान्तः क्षमा-शीलो गम्भीरो धृतिमान्समः ।
वदान्यो धार्मिकः शूरः करूणो मान्य-मान-कृत् ॥७३॥

स्थिरो दान्तः क्षमा-शीलो गम्भीरो धृतिमान्समः ।
वदान्यो धार्मिकः शूरः करुणो मान्य-मान-कृत् ॥७३॥

स्थिरः—स्थिर; **दान्तः**—संयमित इन्द्रियों वाले; **क्षमा-शीलः**—क्षमाशील; **गम्भीरः**—गम्भीर; **धृति-मान्**—शान्त, जो कभी बुद्धिहीन नहीं होते; **समः**—समान; **वदान्यः**—उदार; **धार्मिकः**—धार्मिक; **शूरः**—वीर; **करुणः**—दयालु; **मान्य-मान-कृत्**—आदरणीय लोगों के प्रति सम्मान का भाव रखने वाले।

अनुवाद

"'भगवान् कृष्ण स्थिर, इन्द्रियों को वश में रखने वाले, क्षमाशील, गम्भीर तथा शान्त हैं। वे सब पर समदृष्टि रखने वाले भी हैं। साथ ही वे वदान्य, धार्मिक, शूर तथा दयालु हैं। वे सम्मानित व्यक्तियों के प्रति सदैव आदरयुक्त हैं।

दक्षिणो विनयी ह्रीमान्शरणागत-पालकः ।
सुखी भक्त-सुहृत्प्रेम-वश्यः सर्व-शुभँ-करः ॥७४॥

दक्षिणो विनयी ह्रीमान्शरणागत-पालकः ।
सुखी भक्त-सुहृत्प्रेम-वश्यः सर्व-शुभँ-करः ॥७४॥

दक्षिणः—सरल और उदार; **विनयी**—विनम्र; **ह्री-मान्**—महिमागान करने पर लज्जाशील; **शरण-आगत-पालकः**—शरणागत जीवों के रक्षक; **सुखी**—सदैव प्रसन्न; **भक्त-सुहृत्**—भक्तों के शुभचिन्तक; **प्रेम-वश्यः**—प्रेम के वशीभूत; **सर्व-शुभम्-करः**—सर्व शुभकारी।

अनुवाद

"'कृष्ण अत्यन्त सरल तथा उदार हैं, वे विनीत तथा लज्जाशील हैं और शरणागतों के रक्षक हैं। वे परम सुखी, अपने भक्तों के शुभचिन्तक, परम कल्याणप्रद तथा प्रेम के वशीभूत होने वाले हैं।

प्रतापी कीर्तिमान्नक्त-लोकः साधु-समाश्रयः ।
नारी-गण-मनोहारी सर्वाराध्यः समृद्धिमान् ॥७५॥

प्रतापी कीर्तिमान् रक्त-लोकः साधु-समाश्रयः ।
नारी-गण-मनोहारी सर्वाराध्यः समृद्धिमान् ॥ ७५ ॥

प्रतापी—अत्यन्त प्रभावशाली; **कीर्ति-मान्**—सत्कार्यों के लिए प्रसिद्ध; **रक्त-लोकः**—सभी लोगों की आसक्ति के पात्र; **साधु-समाश्रयः**—सज्जनों के आश्रय; **नारी-गण**—स्त्रियों के; **मनः-हारी**—मन को हरने वाले; **सर्व-आराध्यः**—सभी के द्वारा आराधनीय; **समृद्धि-मान्**—अत्यन्त धनवान।

अनुवाद

"'कृष्ण अत्यन्त प्रतापी तथा विख्यात हैं और वे हर एक की अनुरक्ति के लक्ष्य हैं। वे अच्छे तथा गुणी लोगों के आश्रय हैं। वे स्त्रियों के मन को आकृष्ट करने वाले और सबके आराध्य हैं। वे अत्यन्त समृद्धिशाली हैं।

वरीयानीश्वरश्चेति गुणास्तस्यानुकीर्तिताः ।
समुद्रा इव पञ्चाशद्दुर्विगाहा हरेरमी ॥ ७६ ॥

वरीयान्—सर्वश्रेष्ठ; **ईश्वरः**—परम नियन्ता; **च**—तथा; **इति**—इस प्रकार; **गुणाः**—दिव्य गुण; **तस्य**—उनके; **अनुकीर्तिताः**—वर्णन किये; **समुद्राः**—समुद्र; **इव**—जैसे; **पञ्चाशत्**—५०; **दुर्विगाहाः**—पूर्ण रूप से वर्णन करने में कठिन; **हरेः**—पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् हरि के; **अमी**—ये सभी।

अनुवाद

"'कृष्ण सर्वोपरि हैं और सदैव परमेश्वर तथा नियन्ता के रूप में महिमामंडित किये जाते हैं। इस तरह उपर्युक्त सारे दिव्य गुण उनमें पाये जाते हैं। पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के उपर्युक्त पचास गुण समुद्र के समान गम्भीर हैं। तात्पर्य यह है कि उन्हें पूर्णरूपेण समझ पाना कठिन है।

जीवेष्वेते वसन्तोऽपि बिन्दु-बिन्दुतया क्वचित् ।
परिपूर्णतया भान्ति तत्रैव पुरुषोत्तमे ॥ ७७ ॥

जीवेषु—जीवों में; **एते**—ये; **वसन्तः**—रहते हैं; **अपि**—यद्यपि; **बिन्दु-बिन्दुतया**—अत्यन्त निम्न मात्रा में; **क्वचित्**—कभी-कभी; **परिपूर्णतया**—पूर्णता के साथ; **भान्ति**—प्रकट होते हैं; **तत्र**—उनमें; **एव**—अवश्य; **पुरुष-उत्तमे**—पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् में।

अनुवाद

"'जीवों में ये गुण कभी-कभी सूक्ष्म मात्रा में प्रकट होते हैं, किन्तु पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् में तो ये पूरी तरह से प्रकट होते हैं।'

तात्पर्य

यह श्लोक *भक्तिरसामृतसिन्धु* (२.१.३०) में आया है। सारे जीव पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के अंश हैं। जैसाकि *भगवद्गीता* (१५.७) में भगवान् कृष्ण द्वारा कहा गया है :

ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः।
मनः षष्ठानीन्द्रियाणि प्रकृतिस्थानि कर्षति॥

"इस भौतिक जगत् में सारे जीव मेरे सनातन विभिन्न अंश हैं। बद्ध होने के कारण वे मन समेत अपनी छहों इन्द्रियों से अत्यन्त कठिन संघर्ष करते रहते हैं।"

जीव में कृष्ण के गुणों का अत्यन्त सूक्ष्म अंश विद्यमान रहता है। स्वर्ण का एक कण भी स्वर्ण होता है, किन्तु वह स्वर्ण की खान के बराबर नहीं हो सकता। इसी तरह जीवों में पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के सभी गुणों की सूक्ष्म मात्रा पाई जाती है, किन्तु जीव कभी भी पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के समान नहीं हो सकता। इसीलिए ईश्वर को परम पुरुष और जीवात्मा को *जीव* कहा गया है। ईश्वर समस्त जीवों में प्रधान हैं, क्योंकि वे अन्य सबकी आवश्यकताओं को पूर्ण करते हैं—*एको बहूनां यो विदधाति कामान्।* मायावादी मानते हैं कि हर प्राणी ईश्वर है, किन्तु यदि हम इस दर्शन को मान भी लें, तो कोई यह नहीं कह सकता कि प्रत्येक प्राणी प्रत्येक बात में भगवान् के समान है। केवल अज्ञानी ही मानते हैं कि हर प्राणी ईश्वर के समान है या हर प्राणी ईश्वर है।

अथ पञ्च-गुणा ये स्युरंशेन गिरिशादिषु ॥ ७८॥
अथ पञ्च-गुणा ये स्युरंशेन गिरिशादिषु ॥ ७८॥

अथ—अब (इनके अतिरिक्त); **पञ्च-गुणाः**—पाँच गुण; **ये**—जो; **स्युः**—हो सकते हैं; **अंशेन**—अंश द्वारा; **गिरिश-आदिषु**—शिवजी जैसे देवताओं में।

अनुवाद

"'इन पचास गुणों के अतिरिक्त भी पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् में पाँच गुण और पाये जाते हैं, जो शिवजी जैसे देवताओं में आंशिक रूप से पाये जाते हैं।

तात्पर्य

यह श्लोक तथा अगले सात श्लोक *भक्तिरसामृतसिन्धु* (२.१.३७-४४) में भी आये हैं।

सदा स्वरूप-सम्प्राप्तः सर्व-ज्ञो नित्य-नूतनः ।
सच्चिदानन्द-सान्द्राङ्गः सर्व-सिद्धि-निषेवितः ॥७९॥
अथोच्यन्ते गुणाः पञ्च ये लक्ष्मीशादि-वर्तिनः ।
अविचिन्त्य-महा-शक्तिः कोटि-ब्रह्माण्ड-विग्रहः ॥८०॥
अवतारावली-बीजं हतारि-गति-दायकः ।
आत्माराम-गणाकर्षीत्यमी कृष्णे किलाद्भुताः ॥८१॥

सदा स्वरूप-सम्प्राप्तः सर्वज्ञो नित्य-नूतनः ।
सच्चिदानन्द-सान्द्राङ्गः सर्व-सिद्धि-निषेवितः ॥७९॥
अथोच्यन्ते गुणाः पञ्च ये लक्ष्मीशादि-वर्तिनः ।
अविचिन्त्य-महा-शक्तिः कोटि-ब्रह्माण्ड-विग्रहः ॥८०॥
अवतारावली-बीजं हतारि-गति-दायकः ।
आत्माराम-गणाकर्षीत्यमी कृष्णे किलाद्भुताः ॥८१॥

सदा—सदैव; **स्वरूप-सम्प्राप्तः**—अपने नित्य स्वरूप में स्थित; **सर्वज्ञः**—सब जानने वाले; **नित्य-नूतनः**—सदा नवीन; **सत्-चित्-आनन्द-सान्द्र-अङ्गः**—शाश्वतता, ज्ञान तथा आनन्द के प्रगाढ़ रूप; **सर्व-सिद्धि-निषेवितः**—सभी योगसिद्धियों से परिपूर्ण; **अथ**—अब; **उच्यन्ते**—कहते हैं; **गुणाः**—गुण; **पञ्च**—पाँच; **ये**—जो; **लक्ष्मी-ईश**—लक्ष्मीपति भगवान् विष्णु में; **आदि**—इत्यादि; **वर्तिनः**—प्रकट; **अविचिन्त्य**—अकल्पनीय; **महा-शक्तिः**—परम शक्ति से युक्त; **कोटि-ब्रह्माण्ड**—असंख्य ब्रह्माण्ड; **विग्रहः**—साकार; **अवतार**—अवतारों के; **आवली**—समूहों के; **बीजम्**—स्रोत; **हत-अरि**—उनके द्वारा मारे गये शत्रुओं को; **गति-दायकः**—मुक्ति देने वाले; **आत्माराम-गण**—जो आत्मतुष्ट हैं, उनको; **आकर्षी**—आकर्षित

करने वाले; **इति**—इस प्रकार; **अमी**—ये; **कृष्णे**—कृष्ण में; **किल**—अवश्य; **अद्भुताः**—अत्यन्त अद्भुत।

अनुवाद

"'ये गुण हैं (१) भगवान् सदैव अपनी मूल स्थिति में रहते हैं, (२) वे सर्वज्ञ हैं, (३) वे नित्यनूतन तथा युवा हैं, (४) वे शाश्वतता, ज्ञान तथा आनन्द के घनीभूत रूप हैं तथा (५) वे समस्त योगसिद्धियों से युक्त हैं। इसके अतिरिक्त पाँच गुण और हैं, जो लक्ष्मीपति नारायण में वैकुण्ठ लोकों में पाये जाते हैं। ये गुण कृष्ण में भी पाये जाते हैं, किन्तु ये गुण शिवजी इत्यादि देवताओं अथवा अन्य जीवों में नहीं पाये जाते। ये गुण हैं (१) भगवान् अचिंत्य सर्वोपरि शक्ति से युक्त हैं, (२) वे अपने शरीर से अनन्त ब्रह्माण्डों की उत्पत्ति करते हैं, (३) वे समस्त अवतारों के मूल स्त्रोत हैं, (४) वे उनके द्वारा मारे गये शत्रुओं को मुक्ति देते हैं तथा (५) वे स्वयं-सन्तुष्ट आत्मारामों को भी आकृष्ट करते हैं। यद्यपि ये गुण वैकुण्ठ लोक के प्रधान विग्रह नारायण में पाये जाते हैं, किन्तु कृष्ण में तो ये और भी अद्भुत रूप में मिलते हैं।

सर्वाद्भुत-चमत्कार-लीला-कल्लोल-वारिधिः ।
अतुल्य-मधुर-प्रेम-मण्डित-प्रिय-मण्डलः ॥ ८२ ॥
त्रि-जगन्मानसाकर्षि-मुरली-कल-कूजितः ।
असमानोर्ध्व-रूप-श्री-विस्मापित-चराचरः ॥ ८३ ॥

सर्वाद्भुत-चमत्कार-लीला-कल्लोल-वारिधिः ।
अतुल्य-मधुर-प्रेम-मण्डित-प्रिय-मण्डलः ॥ ८२ ॥
त्रि-जगन्मानसाकर्षि-मुरली-कल-कूजितः ।
असमानोर्ध्व-रूप-श्री-विस्मापित-चराचरः ॥ ८३ ॥

सर्व-अद्भुत-चमत्कार—सबको आश्चर्यचकित करने वाले; **लीला**—लीलाओं की; **कल्लोल**—लहरों से परिपूर्ण; **वारिधिः**—समुद्र; **अतुल्य-मधुर-प्रेम**—अतुलनीय माधुर्य प्रेम के साथ; **मण्डित**—सुसज्जित; **प्रिय-मण्डलः**—प्रियजनों के समूह के साथ; **त्रि-जगत्**—तीनों लोकों के; **मानस-आकर्षि**—मनों को आकर्षित करने वाली; **मुरली**—मुरली की; **कल-**

कूजितः—मधुर ध्वनि; **असमान-ऊर्ध्व**—अद्वितीय तथा सबसे श्रेष्ठ; **रूप**—सौंदर्य द्वारा; **श्री**—तथा ऐश्वर्य; **विस्मापित-चर-अचरः**—चर तथा अचर जीवों को विस्मित करने वाला।

अनुवाद

"'इन साठ दिव्य गुणों के अतिरिक्त कृष्ण में चार अन्य दिव्य गुण पाये जाते हैं, जो नारायण में भी नहीं पाये जाते। ये हैं—(१) कृष्ण लीलाओं की तरंगों से पूरित सागर के समान हैं, जो तीनों लोकों में हर प्राणी के भीतर आश्चर्य उत्पन्न करने वाली हैं। (२) वे अपने माधुर्य-प्रेम के कार्यकलापों में सदा अपने प्रिय भक्तों से घिरे रहते हैं, जो उनके प्रति अप्रतिम प्रेम रखते हैं। (३) वे अपनी वंशी की मधुर ध्वनि से तीनों लोकों के मनों को आकृष्ट करने वाले हैं। (४) उनका सौन्दर्य तथा उनका ऐश्वर्य अद्वितीय है। न तो कोई उनके समान है और न उनसे बढ़कर है। इस तरह तीनों लोकों में भगवान् सारे चर एवं अचर जीवों को चमत्कृत करते हैं। वे इतने सुन्दर हैं कि वे कृष्ण कहलाते हैं।

तात्पर्य

कम बुद्धि वाले मायावादी दार्शनिक इस विषय को यह कहकर छोड़ देते हैं कि कृष्ण का अर्थ काला होता है। कृष्ण के गुणों को न जानने के कारण ये नास्तिक मूढ़ उन्हें पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के रूप में स्वीकार नहीं करते। यद्यपि महापुरुषों, आचार्यों तथा ऋषियों ने भगवान् को स्वीकार करते हुए उनका वर्णन किया है, किन्तु मायावादी लोग फिर भी उनकी प्रशंसा नहीं करते। दुर्भाग्यवश आज के मानव-समाज की स्थिति इतनी दयनीय है कि लोग अपने जीवन की दैनिक आवश्यकताओं को भी पूरा नहीं कर पाते। फिर भी वे इन मायावादी दार्शनिकों द्वारा मोहित होकर सही रास्ते से भटक रहे हैं। *भगवद्गीता* के अनुसार, केवल कृष्ण को समझने से ही मनुष्य जन्म-मृत्यु के चक्र से छूट सकता है। *त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन।* दुर्भाग्यवश कृष्णभावना का यह महान् विज्ञान कृष्ण-विरोधी इन मायावादी दार्शनिकों के कारण अवरुद्ध हो गया है। जो लोग इस कृष्णभावनामृत आन्दोलन का प्रचार कर रहे हैं, उन्हें *भक्तिरसामृतसिन्धु* में दिये हुए कथनों से कृष्ण को समझने का प्रयास करना चाहिए।

लीला प्रेम्णा प्रियाधिक्यं माधुर्यं वेणु-रूपयोः
इत्यसाधारणं प्रोक्तं गोविन्दस्य चतुष्टयम्
एवं गुणाश्चतुर्भेदाश्चतुः-षष्टिरुदाहृताः

लीला प्रेम्णा प्रियाधिक्यं माधुर्यं वेणु-रूपयोः।
इत्यसाधारणं प्रोक्तं गोविन्दस्य चतुष्टयम् ॥ ८४॥
एवं गुणाश्चतुर्भेदाश्चतुः-षष्टिरुदाहृताः ॥ ८५॥

लीला—लीलाएँ; **प्रेम्णा**—दिव्य प्रेम के साथ; **प्रिय-आधिक्यम्**—अत्यन्त उन्नत भक्तों की प्रचूरता; **माधुर्यम्**—मधुरता; **वेणु-रूपयोः**—कृष्ण की वेणु तथा सुन्दरता की; **इति**—इस प्रकार; **असाधारणम्**—असामान्य; **प्रोक्तम्**—कही गई हैं; **गोविन्दस्य**—भगवान् गोविन्द के; **चतुष्टयम्**—चार विशेष लक्षण; **एवम्**—इस प्रकार; **गुणाः**—दिव्य गुण; **चतुः-भेदाः**—चार विभागों से युक्त; **चतुः-षष्टिः**—६४; **उदाहृताः**—वर्णित।

अनुवाद

"'कृष्ण में नारायण से बढ़कर चार विशेष दिव्य गुण हैं—उनकी अद्भुत लीलाएँ, अद्भुत संगियों की प्रचुरता (यथा गोपियाँ) जो उन्हें अत्यन्त प्रिय हैं, उनका अद्भुत सौन्दर्य तथा उनकी बाँसुरी की अद्भुत ध्वनि। भगवान् कृष्ण सामान्य जीवों तथा शिवजी समान देवताओं से भी श्रेष्ठ हैं। यहाँ तक कि वे स्वांश नारायण से भी श्रेष्ठ हैं। पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् में कुल मिलाकर ६४ दिव्य गुण पूर्ण रूप से होते हैं।'

अनन्त गुण श्री-राधिकार, पँचिश—प्रधान ।
येइ गुणेर 'वश' हय कृष्ण भगवान् ॥ ८६॥
अनन्त गुण श्री-राधिकार, पँचिश—प्रधान ।
येइ गुणेर 'वश' हय कृष्ण भगवान् ॥ ८६॥

अनन्त गुण—असीमित गुण; **श्री-राधिकार**—श्रीमती राधारानी के; **पँचिश**—२५; **प्रधान**—मुख्य; **येइ गुणेर**—जिन गुणों द्वारा; **वश**—वश में; **हय**—हो जाते हैं; **कृष्ण**—कृष्ण; **भगवान्**—पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्।

अनुवाद

"इसी प्रकार श्रीमती राधारानी में अनन्त दिव्य गुण हैं, जिनमें से पच्चीस प्रमुख हैं। श्रीकृष्ण श्रीमती राधारानी के इन्हीं दिव्य गुणों के वश में रहते हैं।

अथ वृन्दावनेश्वर्याः कीर्त्यन्ते प्रवरा गुणाः
मधुरेयं नव-वयाश्चलापाङ्गोज्ज्वल-स्मिता ।
चारु-सौभाग्य-रेखाढ्या गन्धोन्मादित-माधवा ॥८७॥
सङ्गीत-प्रसराभिज्ञा रम्य-वाँ नर्म-पण्डिता ।
विनीता करुणा-पूर्णा विदग्धा पाटवान्विता ॥८८॥
लज्जा-शीला सु-मर्य्यादा धैर्य-गाम्भीर्य-शालिनी ।
सु-विलासा महाभाव-परमोत्कर्ष-तर्षिणी ॥८९॥
गोकुल-प्रेम-वसतिर्जगच्छ्रेणी-लसद्-यशाः ।
गुर्वर्पित-गुरु-स्नेहा सखी-प्रणयिता-वशा ॥९०॥
कृष्ण-प्रियावली-मुख्या सन्ततार्श्रव-केशवा ।
बहुना किं गुणास्तस्याः सङ्ख्यातीता हरेरिव ॥९१॥

अथ वृन्दावनेश्वर्याः कीर्त्यन्ते प्रवरा गुणाः
मधुरेयं नव-वयाश्चलापाङ्गोज्ज्वल-स्मिता ।
चारु-सौभाग्य-रेखाढ्या गन्धोन्मादित-माधवा ॥८७॥
सङ्गीत-प्रसराभिज्ञा रम्य-वाँ नर्म-पण्डिता ।
विनीता करुणा-पूर्णा विदग्धा पाटवान्विता ॥८८॥
लज्जा-शीला सु-मर्य्यादा धैर्य्य-गाम्भीर्य्य-शालिनी ।
सु-विलासा महाभाव-परमोत्कर्ष-तर्षिणी ॥८९॥
गोकुल-प्रेम-वसतिर्जगच्छ्रेणी-लसद्-यशाः ।
गुर्वर्पित-गुरु-स्नेहा सखी-प्रणयिता-वशा ॥९०॥
कृष्ण-प्रियावली-मुख्या सन्ततार्श्रव-केशवा ।
बहुना किं गुणास्तस्याः सङ्ख्यातीता हरेरिव ॥९१॥

अथ—अब; **वृन्दावन-ईश्वर्याः**—वृन्दावन की रानी (श्री राधिका) के; **कीर्त्यन्ते**—वर्णित किये जाते हैं; **प्रवराः**—मुख्य; **गुणाः**—गुण; **मधुरा**—मधुर; **इयम्**—यह (राधिका); **नव-वयाः**—युवती; **चल-अपाङ्ग**—अधीर नेत्रों वाली; **उज्ज्वल-स्मिता**—उज्जवल मुस्कान से युक्त; **चारु-सौभाग्य-रेख-आढ्या**—देह पर सुन्दर, शुभ रेखाओं से युक्त; **गन्ध**—अपने देह की अद्भुत सुगन्ध द्वारा; **उन्मादित-माधवा**—कृष्ण को अधीर करने वाली; **सङ्गीत**—गीतों के; **प्रसर-अभिज्ञा**—विस्तार का ज्ञान रखने वाली; **रम्य-वाक्**—आकर्षक वाणी वाली; **नर्म-पण्डिता**—हास्य विनोद में निपुण; **विनीता**—विनम्र; **करुणा-पूर्णा**—कृपा से पूर्ण; **विदग्धा**—दक्ष; **पाटव-अन्विता**—अपने कर्तव्य करने में निपुण; **लज्जा-शीला**—शर्मीली; **सु-मर्य्यादा**—सम्मान करने वाली; **धैर्य्य**—धीर; **गाम्भीर्य्य-शालिनी**—और गम्भीर; **सु-**

विलासा—विलास करने वाली; **महा-भाव**—उन्नत भावों की; **परम-उत्कर्ष**—सर्वोच्च सीमा पर; **तर्षिणी**—इच्छुक; **गोकुल-प्रेम**—गोकुल के (निवासियों के) प्रेम की; **वसतिः**—आश्रय; **जगत्-श्रेणी**—कृष्ण-प्रेम के आश्रय रूपी शरणागत भक्तों में; **लसत्**—दीप्तिमान; **यशाः**—जिनका यश; **गुरु**—बड़ों के प्रति; **अर्पित**—अर्पित; **गुरु-स्नेहा**—जिनका महान् स्नेह; **सखी-प्रणयिता-वशा**—अपनी गोपी सखियों के प्रेम द्वारा वशीभूत; **कृष्ण-प्रिय-आवली**—कृष्ण के प्रियजनों में; **मुख्या**—सर्वप्रमुख; **सन्तत**—सदैव; **आश्रव-केशवाः**—जिनके प्रति भगवान् केशव समर्पित हैं; **बहुना किम्**—संक्षेप में; **गुणाः**—गुण; **तस्याः**—उनके; **सङ्ख्यातीताः**—गिनती से परे; **हरेः**—भगवान् कृष्ण की; **इव**—भाँति।

अनुवाद

'" श्रीमती राधारानी के पच्चीस दिव्य गुण इस प्रकार हैं—(१) वे अत्यन्त मधुरा हैं। (२) वे नित्य नवयौवना हैं। (३) उनकी आँखें चंचल हैं। (४) वे उज्ज्वल हँसी हँसती हैं। (५) उनकी रेखाएँ सुन्दर तथा शुभ हैं। (६) वे कृष्ण को अपनी शारीरिक सुगन्ध से सुखी बनाती हैं। (७) वे गायन में निपुणा हैं। (८) उनकी वाणी मोहक है। (९) वे परिहास करने तथा मधुर बोलने में पटु हैं। (१०) वे अत्यन्त विनीता हैं। (११) वे करुणा से पूर्ण हैं। (१२) वे चतुरा हैं। (१३) वे अपना कार्य करने में पटु हैं। (१४) वे लज्जाशीला हैं। (१५) वे सदैव आदर देवे वाली हैं। (१६) वे सदैव शान्त हैं। (१७) वे सदा गम्भीर रहने वाली हैं। (१८) वे जीवन का आनन्द उठाने में पटु हैं। (१९) वे महाभाव में स्थित रहती हैं। (२०) वे गोकुल में प्रेमालापों की आगार हैं। (२१) वे विनीत भक्तों में सर्वाधिक प्रसिद्ध हैं। (२२) वे गुरुजनों के प्रति स्नेह रखने वाली हैं। (२३) वे अपनी सखियों के प्रेम के वश में हैं। (२४) वे प्रमुख गोपी हैं। (२५) वे कृष्ण को निरन्तर अपने वश में रखती हैं। संक्षेप में, वे कृष्ण की ही तरह असीम दिव्य गुणों से युक्त हैं।'

तात्पर्य

ये श्लोक *उज्ज्वल-नीलमणि* के श्रीराधाप्रकरण (११-१५) में प्राप्य हैं।

নায়ক, নায়িকা,—দুই রসের 'আলম্বন' ।
সেই দুই শ্রেষ্ঠ,—রাধা, ব্রজেন্দ্র-নন্দন ॥৯২॥

नायक, नायिका,—दुइ रसेर 'आलम्बन' ।
सेइ दुइ श्रेष्ठ,—राधा, व्रजेन्द्र-नन्दन ॥ ९२ ॥

नायक—नायक; **नायिका**—नायिका; **दुइ**—दो; **रसेर**—रसों का; **आलम्बन**—आधार; **सेइ**—वे; **दुइ**—दोनों; **श्रेष्ठ**—श्रेष्ठ; **राधा**—श्रीमती राधारानी; **व्रजेन्द्र-नन्दन**—तथा महाराज नन्द के पुत्र, कृष्ण।

अनुवाद

"नायक तथा नायिका समस्त रसों का आधार होते हैं और श्रीमती राधारानी तथा महाराज नन्द के पुत्र श्रीकृष्ण सर्वश्रेष्ठ नायिका-नायक हैं।

एइ-मत दास्ये दास, सख्ये सखा-गण ।
वात्सल्ये माता पिता आश्रयालम्बन ॥ ९३ ॥

एइ-मत दास्ये दास, सख्ये सखा-गण ।
वात्सल्ये माता पिता आश्रयालम्बन ॥ ९३ ॥

एइ-मत—इस प्रकार; **दास्ये**—दास्य के दिव्य भाव में; **दास**—सेवक; **सख्ये**—मित्रता के दिव्य रस में; **सखा-गण**—सखागण; **वात्सल्ये**—वात्सल्य के दिव्य रस में; **माता पिता**—माता तथा पिता; **आश्रय-आलम्बन**—प्रेम के आधार या आश्रय।

अनुवाद

"जिस तरह भगवान् कृष्ण तथा श्रीमती राधारानी माधुर्य-प्रेम के आलम्बन तथा आश्रय हैं, उसी तरह दास्य रस में महाराज नन्द के पुत्र आलम्बन तथा चित्रक, रक्तक तथा पत्रक जैसे दास आश्रय हैं। इसी प्रकार दिव्य सख्य रस में कृष्ण आलम्बन हैं और श्रीदामा, सुदामा तथा सुबल जैसे मित्र आश्रय हैं। दिव्य वात्सल्य रस में कृष्ण आलम्बन हैं और माता यशोदा तथा महाराज नन्द आश्रय हैं।

এই রস অনুভবে যৈছে ভক্ত-গণ ।
যৈছে রস হয়, শুন তাহার লক্ষণ ॥ ৯৪ ॥

এइ রস অনুভবে য়ৈছে ভক্ত-গণ ।
য়ৈছে রস হয়, শুন তাহার লক্ষণ ॥ ৯৪ ॥

एइ—यह; **रस**—रस; **अनुभवे**—अनुभव में; **ग्रैछे**—कैसा; **भक्त-गण**—भक्तों द्वारा; **ग्रैछे**—कैसे; **रस**—रस; **हय**—प्रकट होता है; **शुन**—सुनो; **ताहार**—उनके; **लक्षण**—लक्षण।

अनुवाद

"अब यह सुनें कि रस किस तरह प्रकट होते हैं और विभिन्न पदों पर स्थित भक्तों द्वारा वे किस तरह अनुभव किये जाते हैं।

भक्ति-निर्धूत-दोषाणां प्रसन्नोज्ज्वल-चेतसाम् ।
श्री-भागवत-रक्तानां रसिकासङ्ग-रङ्गिणाम् ॥ ९५ ॥
जीवनी-भूत-गोविन्द-पाद-भक्ति-सुख-श्रियाम् ।
प्रेमान्तरङ्ग-भूतानि कृत्यान्येवानुतिष्ठताम् ॥ ९६ ॥
भक्तानां हृदि राजन्ती संस्कार-युगलोज्ज्वला ।
रतिरानन्द-रूपैव नीयमाना तु रस्यताम् ॥ ९७ ॥
कृष्णादिभिर्विभावाद्यैर्गतैरनुभवाध्वनि ।
प्रौढ़ानन्दश्चमत्कार-काष्ठामापद्यते पराम् ॥ ९८ ॥

भक्ति-निर्धूत-दोषाणां प्रसन्नोज्ज्वल-चेतसाम् ।
श्री-भागवत-रक्तानां रसिकासङ्ग-रङ्गिणाम् ॥ ९५ ॥
जीवनी-भूत-गोविन्द-पाद-भक्ति-सुख-श्रियाम् ।
प्रेमान्तरङ्ग-भूतानि कृत्यान्येवानुतिष्ठताम् ॥ ९६ ॥
भक्तानां हृदि राजन्ती संस्कार-युगलोज्ज्वला ।
रतिरानन्द-रूपैव नीयमाना तु रस्यताम् ॥ ९७ ॥
कृष्णादिभिर्विभावाद्यैर्गतैरनुभवाध्वनि ।
प्रौढ़ानन्दश्चमत्कार-काष्ठामापद्यते पराम् ॥ ९८ ॥

भक्ति—भक्ति द्वारा; **निर्धूत-दोषाणाम्**—जिनकी भौतिक अशुद्धताएँ धुल गई हैं; **प्रसन्न-उज्ज्वल-चेतसाम्**—जिसके हृदय सन्तुष्ट तथा शुद्ध हैं; **श्री-भागवत-रक्तानाम्**—जो *श्रीमद्भागवत* के दिव्य अर्थों को समझने के इच्छुक हैं; **रसिक-आसङ्ग-रङ्गिणाम्**—जो भक्तों के साथ रहते हैं और उनके दिव्य संग का आनन्द लेते हैं; **जीवनी-भूत**—जीवन बन गया है; **गोविन्द-पाद**—गोविन्द के चरणकमलों के; **भक्ति-सुख-श्रियाम्**—जिनका एकमात्र ऐश्वर्य भक्ति का आनन्द है; **प्रेम-अन्तरङ्ग-भूतानि**—कृष्ण और भक्तों के प्रेम सम्बन्धों के गुह्य रूप के; **कृत्यानि**—कार्यकलाप; **एव**—निश्चित रूप से; **अनुतिष्ठताम्**—करने वाले; **भक्तानाम्**—भक्तों के; **हृदि**—हृदयों में; **राजन्ती**—स्थित; **संस्कार-युगल**—पूर्व तथा वर्तमान शुद्धीकरण की प्रक्रियाओं द्वारा; **उज्ज्वला**—विस्तृत; **रतिः**—प्रेम; **आनन्द-रूपा**—जिसका

स्वरूप दिव्य आनन्द है; **एव**—निश्चित रूप से; **नीयमाना**—लाये गये; **तु**—परन्तु; **रस्यताम्**—स्वाद को; **कृष्ण-आदिभिः**—कृष्ण तथा अन्यों द्वारा; **विभाव-आद्यैः**—विभाव आदि द्वारा; **गतैः**—गये; **अनुभव-अध्वनि**—अनुभव के मार्ग की ओर; **प्रौढ़-आनन्दः**—विकसित आनन्द; **चमत्कार-काष्ठाम्**—आश्चर्य की स्थिति; **आपद्यते**—प्राप्त करते हैं; **पराम्**—सर्वोच्च।

अनुवाद

"'जो भक्ति द्वारा समस्त भौतिक कल्मष से पूरी तरह मुक्त हो चुके हैं, जो सदैव सन्तुष्ट रहते हैं और जिनके हृदय ज्ञान से पूरी तरह से प्रकाशित हो चुके हैं, जो सदैव श्रीमद्भागवत का दिव्य अर्थ समझने के प्रति अनुरक्त रहते हैं, जो सदैव उन्नत भक्तों का संग करने के लिए उत्सुक रहते हैं, जिनका जीवन मात्र गोविन्द के चरणकमलों की सेवा से प्राप्त आनन्द में है, जो प्रेम के गुह्य कार्यों को सदैव सम्पन्न करते हैं—ऐसे उन्नत भक्तों के लिए, जो सहज ही आनन्द में स्थित रहते हैं, प्रेम का बीज (रति) पूर्व तथा वर्तमान संस्कारों से हृदय में विस्तार करता है। इस तरह भावों के अवयवों का मिश्रण स्वादिष्ट बन जाता है और वह भक्त की अनुभूति के अन्तर्गत होने से चमत्कार तथा गहरे आनन्द के सर्वोच्च पद तक पहुँच जाता है।'

तात्पर्य

ये श्लोक *भक्तिरसामृतसिन्धु* (२.१.७-१०) में पाये जाते हैं।

এই রস-আস্বাদ নাহি অভক্তের গণে ।
কৃষ্ণ-ভক্ত-গণ করে রস আস্বাদনে ॥৯৯॥

এइ रस-आस्वाद नाहि अभक्तेर गणे ।
कृष्ण-भक्त-गण करे रस आस्वादने ॥ ९९ ॥

एइ—यह; **रस-आस्वाद**—दिव्य रसों का आस्वादन; **नाहि**—नहीं; **अभक्तेर गणे**—अभक्तों के बीच; **कृष्ण-भक्त-गणे**—भगवान् कृष्ण के शुद्ध भक्त; **करे**—करते हैं; **रस**—इन दिव्य रसों का; **आस्वादने**—आस्वादन।

अनुवाद

"कृष्ण तथा विभिन्न दिव्य रसों में स्थित भिन्न-भिन्न भक्तों के बीच जो आदान-प्रदान होता है, उसका अनुभव अभक्तों को नहीं होता। भक्ति

में उन्नत भक्त ही पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के साथ विभिन्न प्रकार की भक्ति के आदान-प्रदान को अच्छी तरह समझ सकते हैं।

सर्वथैव दुरूहोऽयमभक्तैर्भगवद्रसः ।
तत्पादाम्बुज-सर्वस्वैर्भक्तैरेवानुरस्यते ॥ १०० ॥

सर्वथैव दुरूहोऽयमभक्तैर्भगवद्रसः ।
तत्पादाम्बुज-सर्वस्वैर्भक्तैरेवानुरस्यते ॥ १०० ॥

सर्वथा—सब प्रकार से; **एव**—निश्चित रूप से; **दुरूहः**—समझने में कठिन; **अयम्**—यह; **अभक्तैः**—अभक्तों द्वारा; **भगवत्-रसः**—पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के साथ आदान-प्रदान करने वाले दिव्य रस; **तत्**—वह; **पाद-अम्बुज-सर्व-स्वैः**—जिसके सब कुछ वे चरणकमल हैं; **भक्तैः**—भक्तों द्वारा; **एव**—अवश्य; **अनुरस्यते**—आस्वादन किये जाते हैं।

अनुवाद

"'भक्त तथा भगवान् के बीच जिस दिव्य रस का आदान-प्रदान किया जाता है, उसे अभक्त लोग नहीं समझ सकते। इन्हें समझना सभी तरह से अत्यन्त कठिन है, किन्तु जिसने भगवान् कृष्ण के चरणकमलों में सर्वस्व अर्पित कर दिया है, वह इन दिव्य रसों का आस्वादन कर सकता है।'

तात्पर्य

यह श्लोक *भक्तिरसामृतसिन्धु* (२.५.१३१) में पाया जाता है।

सङ्क्षेपे कहिलुँ एइ 'प्रयोजन'-विवरण ।
पञ्चम-पुरुषार्थ—एइ 'कृष्ण-प्रेम'-धन ॥ १०१ ॥

सङ्क्षेपे कहिलुँ एइ 'प्रयोजन'-विवरण ।
पञ्चम-पुरुषार्थ—एइ 'कृष्ण-प्रेम'-धन ॥ १०१ ॥

सङ्क्षेपे कहिलुँ—मैंने संक्षेप में बताया है; **एइ**—यह; **प्रयोजन-विवरण**—परम लक्ष्य का वर्णन; **पञ्चम-पुरुष-अर्थ**—जीवन का पंचम तथा परम लक्ष्य; **एइ**—यह; **कृष्ण-प्रेम-धन**—कृष्ण-प्रेम का खजाना।

अनुवाद

"यह संक्षिप्त विवरण जीवन के चरम लक्ष्य का विस्तार है। निस्सन्देह,

यह पाँचवा तथा अन्तिम लक्ष्य है, जो कि मोक्ष-पद से परे है। यह कृष्ण-प्रेमधन कहलाता है।

पूर्वे प्रयागे आमि रसेर विचारे ।
तोमार भाइ रूपे कैलुँ शक्ति-सञ्चारे ॥ १०२॥

पूर्वे प्रयागे आमि रसेर विचारे ।
तोमार भाइ रूपे कैलुँ शक्ति-सञ्चारे ॥ १०२॥

पूर्वे—पहले; **प्रयागे**—प्रयाग में; **आमि**—मैंने; **रसेर विचारे**—विभिन्न रसों के विचार में; **तोमार भाइ**—तुम्हारे भाई; **रूपे**—रूप गोस्वामी को; **कैलुँ**—मैंने किया; **शक्ति-सञ्चारे**—सम्पूर्ण शक्ति का संचार।

अनुवाद

"इसके पूर्व मैं तुम्हारे भाई रूप गोस्वामी को इन रसों को समझने की शक्ति प्रदान कर चुका हूँ। प्रयाग में दशाश्वमेध घाट पर उसे शिक्षा देते हुए मैंने ऐसा किया है।

तुमिह करिह भक्ति-शास्त्रेर प्रचार ।
मथुरायं लुप्त-तीर्थेर करिह उद्धार ॥ १०३॥

तुमिह करिह भक्ति-शास्त्रेर प्रचार ।
मथुराय लुप्त-तीर्थेर करिह उद्धार ॥ १०३॥

तुमिह—तुम भी; **करिह**—करो; **भक्ति-शास्त्रेर प्रचार**—भक्ति के प्रामाणिक शास्त्रों का प्रचार; **मथुराय**—मथुरा में; **लुप्त-तीर्थेर**—खोये हुए तीर्थस्थलों की; **करिह**—करो; **उद्धार**—खोज।

अनुवाद

"हे सनातन, तुम भक्ति के प्रामाणिक शास्त्रों का प्रचार करना और मथुरा जिले के लुप्त तीर्थस्थलों का पुनरुद्धार करना।

वृन्दावने कृष्ण-सेवा, वैष्णव-आचार ।
भक्ति-स्मृति-शास्त्र करि' करिह प्रचार ॥ १०४॥

वृन्दावने कृष्ण-सेवा, वैष्णव-आचार ।
भक्ति-स्मृति-शास्त्र करि' करिह प्रचार ॥ १०४॥

वृन्दावने—वृन्दावन में; **कृष्ण-सेवा**—भगवान् कृष्ण की सेवा; **वैष्णव-आचार**—वैष्णवों का आचरण; **भक्ति-स्मृति-शास्त्र**—भक्ति के प्रामाणिक ग्रन्थ; **करि'**—संकलित करके; **करिह**—करो; **प्रचार**—प्रचार।

अनुवाद

"वृन्दावन में भगवान् कृष्ण तथा राधारानी की सेवा स्थापित करना। भक्तिशास्त्रों का भी संकलन करना और वृन्दावन से भक्ति सम्प्रदाय का प्रचार करना।"

तात्पर्य

सनातन गोस्वामी को आदेश हुआ कि (१) भक्ति-शास्त्रों का प्रचार करें और भक्ति के सिद्धान्तों की स्थापना करें, (२) वृन्दावन तथा राधाकुण्ड जैसे लुप्त तीर्थस्थलों की पुनः स्थापना करें, (३) मन्दिर-पूजा की वृन्दावन शैली की स्थापना करें और मन्दिरों में अर्चाविग्रहों की स्थापना करें (श्री सनातन गोस्वामी ने मदनमोहन मन्दिर की तथा रूप गोस्वामी ने गोविन्दजी मन्दिर की स्थापना की) तथा (४) वैष्णव आचरण की व्याख्या करें (जैसाकि श्रील सनातन गोस्वामी ने *हरिभक्ति-विलास* में किया)। इस प्रकार श्रील सनातन गोस्वामी को वैष्णव सम्प्रदाय की स्थापना करने की शक्ति प्रदान की गई। इस सम्बन्ध में श्रीनिवास आचार्य ने अपने *षड्-गोस्वामी-अष्टक* (२) में कहा है :

नानाशास्त्रविचारणैकनिपुणौ सद्धर्मसंस्थापकौ
लोकानां हितकारिणौ त्रिभुवने मान्यौ शरण्याकरौ।
राधाकृष्णपदारविन्दभजनानन्देन मत्तालिकौ
वन्दे रूपसनातनौ रघुयुगौ श्रीजीवगोपालकौ॥

"मैं छः गोस्वामियों को अर्थात् श्री सनातन गोस्वामी, श्री रूप गोस्वामी, श्री रघुनाथ भट्ट गोस्वामी, श्री रघुनाथ दास गोस्वामी, श्री जीव गोस्वामी तथा श्री गोपाल भट्ट गोस्वामी की सादर वन्दना करता हूँ, जो समस्त मानवों के लाभार्थ शाश्वत धार्मिक सिद्धान्तों की स्थापना करने के उद्देश्य से समस्त शास्त्रों का विश्लेषणात्मक अध्ययन करने में अत्यन्त निपुण हैं। इस प्रकार वे तीनों लोकों

में सम्मानित हैं और शरण में जाने योग्य (शरण्य) हैं, क्योंकि वे गोपी-भाव में निमग्न रहते हैं और राधा तथा कृष्ण की दिव्य प्रेमाभक्ति करने में लगे रहते हैं।"

यह कृष्णभावनामृत आन्दोलन छः गोस्वामियों की, विशेषतया श्रील सनातन गोस्वामी तथा श्रील रूप गोस्वामी की परम्परा को आगे बढ़ाने वाला है। इस कृष्णभावनामृत आन्दोलन के निष्ठावान् अनुयायियों को वृन्दावन-सम्प्रदाय (भगवान् की भक्तिमयी सेवा) का सारे विश्व में प्रचार करने के अपने महान् दायित्व को समझना चाहिए। अब तो वृन्दावन में हमारा एक सुन्दर मन्दिर है। अतः गम्भीर जिज्ञासुओं को इसका लाभ उठाना चाहिए। मैं आशान्वित हूँ कि हमारे अनुयायियों में से कोई न कोई अनुयायी इस दायित्व को ग्रहण करके लोगों को कृष्णभावनामृत की शिक्षा देकर मानवता की सर्वश्रेष्ठ सेवा कर सकता है।

युक्त-वैराग्य-स्थिति सब शिखाइल ।
शुष्क-वैराग्य-ज्ञान सब निषेधिल ॥ १०५ ॥

युक्त-वैराग्य—युक्त वैराग्य की; **स्थिति**—स्थिति; **सब**—सम्पूर्ण; **शिखाइल**—सिखाई; **शुष्क-वैराग्य**—शुष्क वैराग्य; **ज्ञान**—तार्किक ज्ञान; **सब**—सम्पूर्ण; **निषेधिल**—निषेध किया।

अनुवाद

तत्पश्चात् श्री चैतन्य महाप्रभु ने सनातन गोस्वामी को विशेष स्थिति के अनुसार उचित वैराग्य के विषय में बतलाया और सभी प्रकार से शुष्क वैराग्य तथा शुष्क ज्ञान का निषेध किया।

तात्पर्य

शुष्क वैराग्य तथा *युक्त वैराग्य* समझने की यही विधि है। *भगवद्गीता* (६.१७) में कहा गया है :

युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु।
युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा॥

"जो खाने, सोने, काम करने तथा आमोद-प्रमोद के मामले में संयमित है, वह योग-पद्धति के अभ्यास से सारे भौतिक दुःखों को दूर कर सकता है।" कृष्णभावनामृत-सम्प्रदाय का प्रसार करने के लिए देश, काल तथा पात्र के अनुसार वैराग्य की सम्भावना सीखनी होगी। पाश्चात्य देशों में कृष्णभावनामृत के इच्छुक पात्र को भौतिक स्थिति से वैराग्य के विषय में बतलाया जाना चाहिए, किन्तु भारत जैसे देश के लोगों को भिन्न ढंग से सिखाना चाहिए। आचार्य (गुरु) को देश, काल तथा पात्र पर विचार करना होगा। उसे नियमाग्रह सिद्धान्त से बचना होगा अर्थात् असम्भव कार्य करने का प्रयास नहीं करना चाहिए। हो सकता है कि जो एक देश में सम्भव हो वह दूसरे देश में सम्भव न हो। आचार्य का कर्तव्य है कि वह भक्ति के सार को ग्रहण करे। जहाँ तक *युक्त वैराग्य* का प्रश्न है, उसमें यत्रतत्र थोड़ा-बहुत परिवर्तन हो सकता है। श्री चैतन्य महाप्रभु ने शुष्क वैराग्य का निषेध किया है और हमने भी अपने गुरु श्री श्रीमद् भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर गोस्वामी से यही सीखा है। भक्ति के सार को ही ग्रहण करना चाहिए, बाह्य साज-सामग्री को नहीं।

सनातन गोस्वामी ने वैष्णव स्मृति, *हरिभक्ति-विलास* की रचना की जो विशेष रूप से भारत के निमित्त थी। उन दिनों भारत में *स्मार्त-विधि* का अनुपालन कुछ हद तक किया जा रहा था। श्रील सनातन गोस्वामी को इसे ध्यान में रखना था और उन्होंने *हरिभक्ति-विलास* की रचना इसे ध्यान में रखकर की। स्मार्त ब्राह्मणों के अनुसार जो व्यक्ति ब्राह्मण-कुल में उत्पन्न नहीं होता, वह ब्राह्मण नहीं हो सकता। किन्तु सनातन गोस्वामी *हरिभक्ति-विलास* (२.१२) में कहते हैं कि दीक्षा के द्वारा कोई भी व्यक्ति ब्राह्मण बन सकता है :

यथा काञ्चनतां याति कांस्यं रसविधानतः।
तथा दीक्षाविधानेन द्विजत्वं जायते नृणाम्॥

"जिस प्रकार काँस्य धातु में रासायनिक प्रक्रिया से पारा मिलाया जाता है, तो वह धातु सोना बन जाती है, इसी प्रकार यदि किसी को समुचित प्रशिक्षण के द्वारा किसी प्रामाणिक गुरु से दीक्षा दी जाए, तो वह तुरन्त ब्राह्मण बन जाता है।"

स्मार्त-विधि तथा गोस्वामी-विधि में अन्तर होता है। स्मार्त-विधि के

अनुसार ब्राह्मण-कुल में उत्पन्न हुए बिना कोई ब्राह्मण नहीं स्वीकार किया जा सकता। गोस्वामी-विधि, *हरिभक्ति-विलास* तथा *नारद-पञ्चरात्र* के अनुसार कोई भी व्यक्ति प्रामाणिक गुरु से दीक्षा प्राप्त करके ब्राह्मण बन सकता है। *श्रीमद्भागवत* (२.४.१८) में शुकदेव गोस्वामी का भी यही निर्णय है :

किरातहूणान्ध्रपुलिन्दपुल्कषा
आभीरशुम्भा यवना खसादयः।
येऽन्ये च पापा यदपाश्रयाश्रयाः
शुद्ध्यन्ति तस्मै प्रभविष्णवे नमः॥

किरात, हूण, आन्ध्र, पुलिन्द, पुल्कश, आभीर, शुम्भ, यवन तथा खस जातियों के सदस्य और वे लोग भी जो पापमय कार्य करते हैं, परम शक्तिमान भगवान् के भक्तों की शरण लेने से शुद्ध हो सकते हैं। मैं उन भगवान् को सादर प्रणाम करता हूँ।"

यदि वैष्णव अपने प्रामाणिक गुरु द्वारा बताये गये विधि-विधानों का पालन करता है, तो वह तुरन्त शुद्ध हो जाता है। यह आवश्यक नहीं है कि भारत में जिन विधि-विधानों का पालन किया जा रहा हो, वे उसी रूप में यूरोप, अमरीका या अन्य पाश्चात्य देशों में हो। बिना प्रभाव के कोरा अनुकरण करना *नियमाग्रह* कहलाता है। विधि-विधानों का पालन न करके विलासितापूर्ण ढंग से जीवन बिताना भी नियमाग्रह कहलाता है। नियमों का अर्थ है "विधि-विधान" और 'आग्रह' का अर्थ है "उत्सुकता।" *अग्रह* का अर्थ है "स्वीकार न करना।" न तो हमें विधि-विधानों का बिना प्रभाव पालन करना चाहिए, न ही उन्हें स्वीकार करने से बचना चाहिए। देश, काल तथा पात्र के अनुसार विशेष विधि की आवश्यकता होती है। हमें प्रामाणिक गुरु का आदेश प्राप्त किये बिना अनुकरण नहीं करना चाहिए। यहाँ जिस सिद्धान्त की संस्तुति की गई है, वह है—*शुष्क-वैराग्य-ज्ञान सब निषेधिल।* यह श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा भक्ति-समप्रदाय का उदार प्रदर्शन है। हमें प्रामाणिक गुरु का आदेश प्राप्त किये बिना कोई भी नई बात मनमाने ढंग से चालू नहीं करनी चाहिए। इस सन्दर्भ में श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर ने श्रील रूप गोस्वामी के दो श्लोक (*भक्तिरसामृतसिन्धु* १.२.२५५-२५६) उद्धृत करते हुए संकेत किया है :

अनासक्तस्य विषयान् यथार्हमुपयुञ्जतः।
निर्बन्धः कृष्णसम्बन्धे युक्तं वैराग्यमुच्यते॥
प्रापञ्चिकतया बुद्ध्या हरिसम्बन्धिवस्तुनः।
मुमुक्षुभिः परित्यागो वैराग्यं फल्गु कथ्यते॥

"जब मनुष्य किसी वस्तु के प्रति आसक्त नहीं रहता, किन्तु हर वस्तु को कृष्ण से सम्बन्धित स्वीकार करता है, तब वह कब्जे की भावना से परे भलीभाँति स्थित होता है। दूसरी ओर जो व्यक्ति कृष्ण से वस्तु का सम्बन्ध जाने बिना हर वस्तु का परित्याग करता है, उसका वैराग्य पूर्ण नहीं होता।" भक्ति का प्रचार करते समय मनुष्य को इन श्लोकों पर गम्भीरतापूर्वक विचार करना चाहिए।

अद्वेष्टा सर्व-भूतानां मैत्रः करूण एव च ।
निर्ममो निरहङ्कारः सम-दुःख-सुखः क्षमी ॥१०६॥
सन्तुष्टः सततं योगी यतात्मा दृढ़-निश्चयः ।
मय्यर्पित-मनो-बुद्धिर्यो मद्भक्तः स मे प्रियः ॥१०७॥

अद्वेष्टा सर्व-भूतानां मैत्रः करुण एव च ।
निर्ममो निरहङ्कारः सम-दुःख-सुखः क्षमी ॥१०६॥
सन्तुष्टः सततं योगी यतात्मा दृढ़-निश्चयः ।
मय्यर्पित-मनो-बुद्धिर्यो मद्भक्तः स मे प्रियः ॥१०७॥

अद्वेष्टा—द्वेष न करनेवाला; **सर्व-भूतानाम्**—संसार के सभी प्राणियों को; **मैत्रः**—मित्र; **करुणः**—दयालु; **एव**—निश्चित रूप से; **च**—तथा; **निर्ममः**—स्वामित्व के भाव से रहित; **निरहङ्कारः**—गर्व से रहित (स्वयं को एक महान् प्रचारक न समझने वाला); **सम-दुःख-सुखः**—दुःख और सुख में समान; **क्षमी**—अन्यों द्वारा किये जाने वाले अपराधों को सहन करने वाला; **सन्तुष्टः**—सन्तुष्ट; **सततम्**—निरन्तर; **योगी**—भक्तियोग में लगा हुआ; **यत-आत्मा**—इन्द्रियों और मन को वश में करके; **दृढ़-निश्चयः**—दृढ़ विश्वास तथा निश्चय युक्त; **मयि**—मुझ में; **अर्पित**—समर्पित; **मनः-बुद्धिः**—मन तथा बुद्धि; **यः**—जो; **मत्-भक्तः**—मेरा भक्त; **सः**—वह व्यक्ति; **मे**—मुझे; **प्रियः**—प्रिय।

अनुवाद

"'जो ईर्ष्यालु नहीं है अपितु सारे जीवों का दयालु मित्र है, जो अपने आपको स्वामी नहीं मानता, जो मिथ्या अहंकार से रहित है, जो सुख तथा दुःख दोनों में समभाव रखता है, जो सदैव सन्तुष्ट रहता है, जो क्षमावान

तथा आत्मसंयमी है, जो संकल्प के साथ भक्ति में संलग्न रहता है और जिसका मन तथा बुद्धि मुझमें समर्पित है—ऐसा भक्त मुझे अत्यन्त प्रिय है।

तात्पर्य

मनुष्य को अन्य जाति या राष्ट्र के लोगों से ईर्ष्या नहीं करनी चाहिए। ऐसा नहीं है कि केवल भारतीय या केवल ब्राह्मण ही वैष्णव बन सकते हैं। कोई भी व्यक्ति वैष्णव बन सकता है। इसलिए हमें स्वीकार करना होगा कि भक्ति सम्प्रदाय विश्वभर में फैले। यही असली *अद्वेष्टा* है। साथ ही *मैत्रः* शब्द सूचित करता है कि जो व्यक्ति विश्वभर में भक्ति-सम्प्रदाय का प्रचार कर सकता है, उसे तो हर एक का समान रूप से मित्र होना चाहिए। ये दो श्लोक तथा अगले छह श्लोक *भगवद्गीता* (१२.१३-२०) में श्रीकृष्ण के वचन हैं।

यस्मान्नोद्विजते लोको लोकान्नोद्विजते तु यः ।
हर्षामर्ष-भयोद्वेगैर्मुक्तो यः स च मे प्रियः ॥१०८॥

यस्मान्नोद्विजते लोको लोकान्नोद्विजते तु यः ।
हर्षामर्ष-भयोद्वेगैर्मुक्तो यः स च मे प्रियः ॥ १०८ ॥

यस्मात्—जिससे; **न**—नहीं; **उद्विजते**—भय या शोक द्वारा उत्तेजित है; **लोकः**—सामान्य लोग; **लोकात्**—लोगों से; **न**—नहीं; **उद्विजते**—विचलित; **तु**—परन्तु; **यः**—जो; **हर्ष**—प्रसन्नता; **अमर्ष**—क्रोध; **भय**—भय; **उद्वेगैः**—तथा चिन्ता से; **मुक्तः**—मुक्त; **यः**—जो; **सः**—वह; **च**—तथा; **मे प्रियः**—मेरा प्रिय भक्त।

अनुवाद

"'जिससे किसी को कोई कष्ट नहीं पहुँचता और जो किसी से विचलित नहीं होता, जो हर्ष, क्रोध, भय तथा चिन्ता से मुक्त है, वह मुझे अत्यन्त प्रिय है।

अनपेक्षः शुचिर्दक्ष उदासीनो गत-व्यथः ।
सर्वारम्भ-परित्यागी यो मे भक्तः स मे प्रियः ॥१०९॥

अनपेक्षः शुचिर्दक्ष उदासीनो गत-व्यथः ।
सर्वारम्भ-परित्यागी यो मे भक्तः स मे प्रियः ॥ १०९ ॥

अनपेक्षः—उदासीन; **शुचिः**—स्वच्छ; **दक्षः**—भगवत् सेवा सम्पन्न करने में दक्ष; **उदासीनः**—किसी भौतिक वस्तु में आसक्ति से रहित; **गत-व्यथः**—समस्त भौतिक कष्टों से मुक्त; **सर्व-आरम्भ**—सब प्रकार के प्रयास; **परित्यागी**—पूर्णतया त्याग करके; **यः**—जो; **मे**—मेरा; **भक्तः**—भक्त; **सः**—वह; **मे प्रियः**—मुझे अत्यन्त प्रिय।

अनुवाद

"'जो भक्त किसी अन्य पर आश्रित न रहकर केवल मुझ पर आश्रित रहता है, जो भीतर तथा बाहर से शुद्ध है, जो दक्ष है, जो भौतिक वस्तुओं के प्रति उदासीन है, जो निश्चिन्त है, जो समस्त कष्टों से रहित है और जो सारे पुण्य तथा पाप कार्यों को त्याग देता है, वह मुझे अत्यन्त प्रिय है।

तात्पर्य

अनपेक्षः शब्द का अर्थ यह है कि भक्त को न तो संसारी लोगों की परवाह करनी चाहिए, न ही उन पर आश्रित रहना चाहिए। उसे केवल पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् पर आश्रित रहना चाहिए तथा भौतिक इच्छाओं से रहित होना चाहिए। उसे भीतर और बाहर से शुद्ध होना चाहिए। बाहर से शुद्ध रहने के लिए नित्य ही साबुन तथा तेल लगाकर नहाना चाहिए और भीतर से शुद्ध रहने के लिए उसे सदैव कृष्ण के विचारों में निमग्न रहना चाहिए। *सर्वारम्भ-परित्यागी* शब्द बतलाता है कि भक्त को पुण्य तथा पापकर्मों की स्मार्त-विधि में रुचि नहीं लेनी चाहिए।

यो न हृष्यति न द्वेष्टि न शोचति न काङ्क्षति ।
शुभाशुभ-परित्यागी भक्तिमान् यः स मे प्रियः ॥११०॥

यो न हृष्यति न द्वेष्टि न शोचति न काङ्क्षति ।
शुभाशुभ-परित्यागी भक्तिमान् यः स मे प्रियः ॥११०॥

यः—(वह) जो; **न हृष्यति**—न हर्षित होता है (कुछ अनुकूल प्राप्त कर); **न द्वेष्टि**—न द्वेष करता है (अप्राकृत रूप से किसी प्रतिकूल स्थिति से प्रभावित होकर); **न**—नहीं; **शोचति**—शोक करता है; **न**—नहीं; **काङ्क्षति**—इच्छा करता है; **शुभ-अशुभ**—भौतिक शुभ तथा अशुभ; **परित्यागी**—पूर्णतया त्यागकर; **भक्ति-मान्**—भक्ति से युक्त; **यः**—जो; **सः**—वह व्यक्ति; **में प्रियः**—मुझे अत्यन्त प्रिय।

अनुवाद

"जो न तो भौतिक बातों से हर्षित होता है न द्वेष रखता है, जो न तो शोक करता है न इच्छा करता है, जो शुभ तथा अशुभ भौतिक वस्तुओं का समान रूप से परित्याग करता है और जो मेरी भक्ति में स्थिर रहता है, वह मुझे अत्यन्त प्रिय है।

समः शत्रौ च मित्रे च तथा मानापमानयोः ।
शीतोष्ण-सुख-दुःखेषु समः सङ्ग-विवर्जितः ॥ १११ ॥
तुल्य-निन्दा-स्तुतिर्मौनी सन्तुष्टो येन केनचित् ।
अनिकेतः स्थिर-मतिर्भक्तिमान्मे प्रियो नरः ॥ ११२ ॥

समः शत्रौ च मित्रे च तथा मानापमानयोः ।
शीतोष्ण-सुख-दुःखेषु समः सङ्ग-विवर्जितः ॥ १११ ॥
तुल्य-निन्दा-स्तुतिर्मौनी सन्तुष्टो येन केनचित् ।
अनिकेतः स्थिर-मतिर्भक्तिमान्मे प्रियो नरः ॥ ११२ ॥

समः—समभाव; **शत्रौ**—शत्रु के प्रति; **च**—तथा; **मित्रे**—मित्र के प्रति; **च**—और; **तथा**—तथा; **मान-अपमानयोः**—मान तथा अपमान में; **शीत**—सर्दी में; **उष्ण**—तथा तीव्र गर्मी में; **सुख**—सुख में; **दुःखेषु**—तथा दुःख में; **समः**—समभाव; **सङ्ग-विवर्जितः**—आसक्ति से रहित; **तुल्य**—समान; **निन्दा**—निन्दा; **स्तुतिः**—तथा स्तुति; **मौनी**—गम्भीर; **सन्तुष्टः**—सदैव सन्तुष्ट; **येन केनचित्**—जो कुछ भी मिल जाये; **अनिकेतः**—निवास के लिए आसक्ति से रहित; **स्थिर**—स्थिर; **मतिः**—मन वाला; **भक्ति-मान्**—प्रेममयी सेवा में लगा हुआ; **मे**—मुझे; **प्रियः**—प्रिय; **नरः**—व्यक्ति।

अनुवाद

"'जो मित्रों तथा शत्रुओं के प्रति समभाव रखता है, जो मान तथा अपमान, गर्मी तथा सर्दी, सुख तथा दुःख, यश तथा अपयश में एक समान रहता है, जो भौतिक वस्तुओं से सदैव कल्मषरहित, गम्भीर तथा सन्तुष्ट रहता है, जो किसी प्रकार के घर-बार की परवाह नहीं करता तथा जो भक्ति में सदैव स्थिर रहता है, वह मुझे अत्यन्त प्रिय है।

ये तु धर्मामृतमिदं यथोक्तं पर्युपासते ।
श्रद्दधाना मत्परमा भक्तास्तेऽतीव मे प्रियाः ॥ ११३ ॥

ये तु धर्मामृतमिदं यथोक्तं पर्य्युपासते ।
श्रद्दधाना मत्परमा भक्तास्तेऽतीव मे प्रियाः ॥ ११३ ॥

ये—जो भक्त; **तु**—परन्तु; **धर्म-अमृतम्**—कृष्णभावनामृत के सनातन धार्मिक नियम; **इदम्**—ये; **यथा-उक्तम्**—जैसे बताये गये हैं; **पर्य्युपासते**—उपासना करते हैं; **श्रद्दधानाः**—विश्वास और निष्ठा के साथ; **मत्-परमाः**—मुझे जीवन का परम लक्ष्य मानकर; **भक्ताः**—ऐसे भक्त; **ते**—वे; **अतीव**—अत्यन्त; **मे**—मुझे; **प्रियाः**—प्रिय।

अनुवाद

"'इस तरह से जो व्यक्ति मुझे परम लक्ष्य मानकर अत्यन्त श्रद्धा तथा भक्ति के साथ कृष्णभावनामृत के इन अमर धार्मिक सिद्धान्तों का पालन करता है, वह मुझे अतीव प्रिय है।'

चीराणि किं पथि न सन्ति दिशन्ति भिक्षां
नैवाङ्घ्रि-पाः पर-भृतः सरितोऽप्यशुष्यन् ।
रुद्धा गुहाः किमजितोऽवति नोपसन्नान्
कस्माद्भजन्ति कवयो धन-दुर्मदान्धान् ॥ ११४ ॥

चीराणि किं पथि न सन्ति दिशन्ति भिक्षां
नैवाङ्घ्रि-पाः पर-भृतः सरितोऽप्यशुष्यन् ।
रुद्धा गुहाः किमजितोऽवति नोपसन्नान्
कस्माद्भजन्ति कवयो धन-दुर्मदान्धान् ॥ ११४ ॥

चीराणि—फटे पुराने वस्त्र; **किम्**—क्या; **पथि**—मार्ग में; **न**—नहीं; **सन्ति**—हैं; **दिशन्ति**—देते; **भिक्षाम्**—भिक्षा; **न**—नहीं; **एव**—अवश्य; **अङ्घ्रि-पाः**—वृक्ष; **पर-भृतः**—दूसरों के पालक; **सरितः**—नदियाँ; **अपि**—भी; **अशुष्यन्**—सूख गई हैं; **रुद्धाः**—बन्द; **गुहाः**—गुफाएँ; **किम्**—क्या; **अजितः**—परम भगवान्, जिन्हें जीते नहीं जा सकते; **अवति**—रक्षा करते हैं; **न**—नहीं; **उपसन्नान्**—शरणागतों की; **कस्मात्**—किस कारण से; **भजन्ति**—चापलूसी करते हैं; **कवयः**—भक्त; **धन-दुर्मद-अन्धान्**—जो लोग भौतिक सम्पत्तियों द्वारा गर्वित हैं।

अनुवाद

"'क्या आम रास्ते में चिथड़े पड़े नहीं मिलते हैं? क्या दूसरों का पालन करने के लिए जीवित रहने वाले वृक्ष अब भिक्षा-दान नहीं करते? क्या नदियाँ सूख जाने के कारण अब प्यासे को जल नहीं देतीं? क्या पर्वत

की गुफाएँ अब बन्द हो चुकी हैं अथवा क्या अजेय भगवान् पूर्ण शरणागतों की रक्षा नहीं करते? तो फिर भक्तों जैसे विद्वान पुरुष उन लोगों की चाटुकारिता करने क्यों जाएँ, जो अपने कठिन परिश्रम से अर्जित किये हुए धन के कारण अन्धे हो रहे हैं?'"

तात्पर्य

यह उद्धरण *श्रीमद्भागवत* (२.२.५) का है। इस श्लोक में शुकदेव गोस्वामी महाराज परीक्षित को उपदेश देते हैं कि भक्त को हर स्थिति में स्वतन्त्र रहना चाहिए। यदि इस श्लोक में दिये गये उपदेशों का पालन किया जाए, तो शरीर का निर्वाह बिना किसी समस्या के किया जा सकता है। शरीर-निर्वाह के लिए हमें आश्रय, भोजन, जल तथा वस्त्र की आवश्यकता पड़ती है और ये सभी आवश्यकताएँ गर्वित धनी पुरुषों के पास गये बिना भी पूरी हो सकती हैं। मनुष्य चाहे तो सड़क पर फेंके गये पुराने वस्त्र एकत्र कर सकता है, वृक्षों के फल खा सकता है, नदियों का पानी पीकर रह सकता है और पर्वत की गुफाओं में निवास कर सकता है। प्रकृति की व्यवस्था से पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की शरण में पूर्णरूपेण गये हुए भक्त को आश्रय, वस्त्र तथा भोजन प्राप्त हो सकते हैं। ऐसे भक्त को अपने जीवन-निर्वाह के लिए धन-मद से चूर व्यक्ति की आवश्यकता नहीं पड़ती। दूसरे शब्दों में, भक्ति किसी भी अवस्था में सम्पन्न की जा सकती है। यह *श्रीमद्भागवत* के निम्नलिखित श्लोक (१.२.६) का कथन है :

स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे।
अहैतुक्यप्रतिहता ययात्मा सुप्रसीदति॥

"सारी मानवता का परम कर्तव्य (धर्म) वह है, जिससे सारे मनुष्य दिव्य परमेश्वर की प्रेमाभक्ति प्राप्त कर सकें। ऐसी भक्ति को निस्वार्थ और अवरोध-रहित होना चाहिए, जिससे पूर्ण आत्मतुष्टि हो सके।" यह श्लोक बतलाता है कि भक्ति को किसी भी भौतिक दशा द्वारा रोका नहीं जा सकता।

तबे सनातन सब सिद्धान्त पुछिला ।
भागवत-सिद्धान्त गूढ़ सकलि कहिला ॥ ११५॥

तबे सनातन सब सिद्धान्त पुछिला ।
भागवत-सिद्धान्त गूढ़ सकलि कहिला ॥ ११५ ॥

तबे—तत्पश्चात्; **सनातन**—सनातन गोस्वामी ने; **सब**—सभी; **सिद्धान्त**—सिद्धान्त; **पुछिला**—पूछे; **भागवत-सिद्धान्त**—*श्रीमद्भागवत* में प्रेममयी सेवा के विषय में निष्कर्षपूर्ण सिद्धान्त; **गूढ़**—अत्यन्त रहस्यपूर्ण; **सकलि**—सभी; **कहिला**—श्री चैतन्य महाप्रभु ने बताए।

अनुवाद

इस के बाद सनातन गोस्वामी ने श्री चैतन्य महाप्रभु से भक्ति विषयक सारे सिद्धान्तों के विषय में पूछा और महाप्रभु ने श्रीमद्भागवत के गुह्य अर्थों को बहुत अच्छी तरह से बतलाया।

हरि-वंशे कहियाछे गोलोके नित्य-स्थिति ।
इन्द्र आसि' करिल यबे श्री-कृष्णेरे स्तुति ॥ ११६ ॥

हरि-वंशे कहियाछे गोलोके नित्य-स्थिति ।
इन्द्र आसि' करिल यबे श्री-कृष्णेरे स्तुति ॥ ११६ ॥

हरि-वंशे—हरिवंश नामक ग्रन्थ में; **कहियाछे**—बताई गई है; **गोलोके**—गोलोक नामक लोक में; **नित्य-स्थिति**—नित्य स्थिति; **इन्द्र**—स्वार्गिक लोकों के राजा इन्द्र; **आसि'**—आकर; **करिल**—करते हैं; **यबे**—जब; **श्री-कृष्णेरे स्तुति**—भगवान् कृष्ण की स्तुति।

अनुवाद

हरिवंश पुराण में गोलोक वृन्दावन का विवरण मिलता है, जहाँ भगवान् कृष्ण शाश्वत रूप से निवास करते हैं। यह जानकारी इन्द्र ने तब दी, जब कृष्ण ने गोवर्धन पर्वत उठा लिया था और उसने कृष्ण की शरण स्वीकार करके उनकी स्तुति की थी।

तात्पर्य

हरिवंश (*विष्णु पर्व,* अध्याय १९) में गोलोक वृन्दावन का वर्णन इस प्रकार मिलता है :

मनुष्यलोकाद् ऊर्ध्वं तु खगानां गतिरुच्यते
आकाशस्योपरि रविर्द्वारं स्वर्गस्य भानुमान्
स्वर्गादूर्ध्वं ब्रह्मलोको ब्रह्मर्षिगणसेवितः ॥
तत्र सोमगतिश्चैव ज्योतिषां च महात्मनाम्

तस्योपरि गवां लोकः साध्यास्तं पालयन्ति हि
स हि सर्वगतः कृष्णः महाकाशगतो महान्॥
उपर्युपरि तत्रापि गतिस्तव तपोमयी
यां न विद्मो वयं सर्वे पृच्छन्तोऽपि पितामहम्॥
गतिः शमदमाढ्यानां स्वर्गः सुकृतकर्मणाम्
ब्राह्म्ये तपसि युक्तानां ब्रह्मलोकः परा गतिः।
गवामेव तु गोलोको दुरारोहा हि सा गतिः।
स तु लोकस्त्वया कृष्ण सीदमानः कृतात्मना।
धृतो धृतिमता वीर निघ्नतोपद्रवान् गवाम्।

जब कृष्ण ने गोवर्धन पर्वत उठा लिया, तो स्वर्ग का राजा इन्द्र उनकी शरण में आ गया और उसने बतलाया कि जिस लोक में मनुष्य निवास करते हैं उसके ऊपर तो आकाश है, जिसमें पक्षी उड़ते हैं। आकाश के ऊपर सूर्य तथा उसकी कक्षा है। यही स्वर्गलोक का प्रवेशद्वार है। स्वर्गलोक के ऊपर ब्रह्मलोक तक अन्य लोक हैं, जिनमें आध्यात्मिक ज्ञान में उन्नत लोग रहते हैं। ब्रह्मलोक तक के लोक भौतिक जगत् (देवीधाम) के भाग हैं। चूँकि भौतिक जगत् देवी दुर्गा के अधीन है, अतः यह देवीधाम कहलाता है। देवीधाम के ऊपर वह स्थान है, जहाँ शिवजी अपनी पत्नी उमा के साथ निवास करते हैं। इस शिवलोक में आध्यात्मिक ज्ञान से युक्त तथा भौतिक कल्मष से मुक्त लोग निवास करते हैं। इस लोक से आगे आध्यात्मिक जगत् है, जिसमें वैकुण्ठ लोक स्थित हैं। गोलोक वृन्दावन इन समस्त वैकुण्ठ लोकों के ऊपर स्थित है। गोलोक वृन्दावन श्रीमती राधारानी तथा कृष्ण के माता-पिता यशोदा तथा महाराज नन्द का राज्य है। इस तरह अनेक ग्रह-मण्डल हैं और इन सबकी सृष्टि भगवान् द्वारा हुई है। *ब्रह्म-संहिता* (५.४३) में कहा गया है :

गोलोकनाम्नि निजधाम्नि तले च तस्य
देवीमहेशहरिधामसु तेषु तेषु।
ते ते प्रभावनिचया विहिताश्च येन
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि॥

"गोलोक वृन्दावन के नीचे देवीधाम, महेशधाम तथा हरिधाम नामक लोक हैं। ये विविध प्रकार से ऐश्वर्ययुक्त हैं। ये पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्, आदि पुरुष गोविन्द से नियन्त्रित हैं। मैं उन भगवान् को सादर प्रणाम करता हूँ।"

इस तरह गोलोक वृन्दावन धाम वैकुण्ठ लोकों के ऊपर स्थित है। इस गोलोक वृन्दावन धाम की तुलना में वैकुण्ठ लोकों वाला आध्यात्मिक आकाश अत्यन्त छोटा है। गोलोक वृन्दावन धाम द्वारा घेरा हुआ स्थान *महाकाश* कहलाता है। इन्द्र ने कहा, "हमने ब्रह्माजी से आपके सनातन लोक के बारे में पूछा, किन्तु हम उसे समझ नहीं पाये। वे सकाम कर्मी जिन्होंने अपने पुण्य कर्मों द्वारा अपनी इन्द्रियों तथा मन को वश में कर रखा है, स्वर्गलोक को जा सकते हैं। जो शुद्ध भक्त सदैव भगवान् नारायण की सेवा में लगे रहते हैं, वे वैकुण्ठ लोकों को प्राप्त करते हैं। किन्तु हे कृष्ण, आपके गोलोक वृन्दावन धाम को प्राप्त कर सकना अत्यन्त कठिन है। तो भी आप तथा वह सर्वोच्च लोक इस धरा पर अवतरित हुए हैं। दुर्भाग्यवश मैंने अपने दुष्कर्मों से आपको विचलित किया है, जो कि मेरी मूर्खता के कारण ही था। अतएव मैं अपनी स्तुतियों से आपको प्रसन्न करने का प्रयास कर रहा हूँ।"

श्री नीलकंठ ने *ऋग् संहिता* (ऋग्वेद १.१५४.६) से उद्धरण देते हुए गोलोक वृन्दावन धाम के अस्तित्व की पुष्टि की है :

ता वां वास्तून्युश्मसि गमध्यै
यत्र गावो भूरिशृङ्गा अयासः।
अत्राह तद् उरुगायस्य कृष्णः
परमं पदं अवभाति भूरि॥

"हम आपके (राधा तथा कृष्ण के) सुन्दर आवासों में जाना चाहते हैं, जिसके आसपास बड़े-बड़े सुन्दर सींगों वाली गौवें विचरण करती हैं। हे उरुगाय (अत्यन्त प्रशंसित कृष्ण), हम सब पर आनन्द की वर्षा करने वाला आपका परम धाम इस पृथ्वी पर अलग से प्रकाशमान है।"

মৌষল-লীলা, আর কৃষ্ণ-অন্তর্ধান ।
কেশাবতার, আর যত বিরুদ্ধ ব্যাখ্যান ॥ ১১৭॥

महिषी-हरण आदि, सब——मायामय ।
व्याख्या शिखाइल यैछे सुसिद्धान्त हय ॥ ११८ ॥

मौषल-लीला, आर कृष्ण-अन्तर्धान ।
केशावतार, आर यत विरुद्ध व्याख्यान ॥ ११७ ॥
महिषी-हरण आदि, सब——मायामय ।
व्याख्या शिखाइल यैछे सुसिद्धान्त हय ॥ ११८ ॥

मौषल-लीला—यदुवंश के विनाश की लीला; **आर**—तथा; **कृष्ण-अन्तर्धान**—कृष्ण का अप्राकट्य; **केश-अवतार**—केशों का अवतार; **आर**—तथा; **यत**—सभी; **विरुद्ध व्याख्यान**—कृष्णभावना के विरुद्ध व्याख्यान; **महिषी-हरण**—रानियों का अपहरण; **आदि**—आदि; **सब**—सभी; **माया-मय**—बहिरंगा शक्ति से निर्मित; **व्याख्या**—व्याख्याएँ; **शिखाइल**—सिखाई; **यैछे**—जो; **सु-सिद्धान्त**—सिद्धान्त; **हय**—हैं।

अनुवाद

कृष्णभावनामृत के निष्कर्षों के विरुद्ध जो काल्पनिक कथाएँ हैं, उनका सम्बन्ध यदुवंश के विनाश, कृष्ण के अन्तर्धान होने, क्षीरोदकशायी विष्णु के श्याम तथा श्वेत बालों से कृष्ण तथा बलराम की उत्पत्ति और रानियों के अपहरण से है। श्री चैतन्य महाप्रभु ने इन कथाओं के सही-सही निष्कर्षों की व्याख्या सनातन गोस्वामी से की।

तात्पर्य

अनेक असुर द्वेषवश कृष्ण को काले कौवा जैसा या बाल का अवतार बतलाते हैं। श्री चैतन्य महाप्रभु ने सनातन गोस्वामी को बतलाया कि कृष्ण के सम्बन्ध में ऐसी आसुरी व्याख्याओं का विरोध कैसे करना चाहिए। *काक* शब्द का अर्थ है कौवा और *केश* का अर्थ है बाल। असुरगण कृष्ण को कौवे का अवतार, शूद्र (काली जाति) का अवतार तथा बाल का अवतार बतलाते हैं, क्योंकि उन्हें इसका ज्ञान नहीं है कि *केश* शब्द *क+ईश* से व्युत्पन्न है, *क* का अर्थ है ब्रह्मा और *ईश्* का अर्थ है भगवान्। इस तरह *केश* शब्द बतलाता है कि कृष्ण ब्रह्मा के भी ईश्वर हैं।

कृष्ण की कुछ लीलाएँ महाभारत में *मौषल लीला* के नाम से वर्णित हैं। इन कथाओं में यदुवंश का विनाश, कृष्ण का अन्तर्धान होना, बहेलिये द्वारा उनका बेधा जाना, कृष्ण का केश अवतार होना तथा महिषी-हरण (कृष्ण की

रानियों का अपहरण) सम्मिलित हैं। वास्तव में ये यथार्थ नहीं हैं, अपितु उन असुरों को मोहग्रस्त बनाने के लिए हैं, जो यह सिद्ध करना चाहते हैं कि कृष्ण सामान्य पुरुष हैं। ये सब इसलिए झूठे हैं, क्योंकि ये लीलाएँ न तो शाश्वत हैं, न दिव्य या आध्यात्मिक। ऐसे अनेक लोग हैं, जो स्वभाव से पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् विष्णु की सर्वोच्चता का विरोध करते हैं। ऐसे लोग *असुर* कहलाते हैं। उन्हें कृष्ण के विषय में भ्रान्तियाँ हैं। जैसाकि *भगवद्गीता* में कहा गया है, असुरों को जन्म-जन्मांतर कृष्ण को विस्मृत करने का अवसर दिया जाता है। इस तरह वे असुरों के परिवार में प्रकट होते हैं और यह क्रिया निरन्तर चलती रहती है और कृष्ण के विषय में उन्हें मोहग्रस्त रखा जाता है। संन्यासियों के वेश में ये असुरगण अपनी खुद की कल्पनाओं के अनुसार *भगवद्गीता* तथा *श्रीमद्भागवत* की व्याख्या तक करते हैं। इस तरह वे जन्म-जन्मांतर असुर बने रहते हैं।

जहाँ तक केश अवतार की बात है, *श्रीमद्भागवत* (२.७.२६) में इसका उल्लेख हुआ है। *विष्णु पुराण* में भी उल्लेख है—*उज्जहारात्मनः केशौ सितकृष्णौ महाबल।*

इसी तरह *महाभारत* (आदिपर्व १८९.३१-३२) में कहा गया है :

स चापि केशौ हरिरुच्चकर्त
एकं शुक्लमपरम् चापि कृष्णम्।
तौ चापि केशावाविशतां यदूनां
कुले स्त्रियौ रोहिणीं देवकीं च॥
तयोरेको बलभद्रो बभूव
योऽसौ श्वेतस्तस्य देवस्य केशः
कृष्णो द्वितीयः केशवः सम्बभूव
केशः योऽसौ वर्णतः कृष्ण उक्तः॥

इस तरह *श्रीमद्भागवत, विष्णु-पुराण* तथा *महाभारत* में कृष्ण एवं बलराम के क्रमशः काले बाल तथा श्वेत बाल के अवतार होने के निर्देश मिलते हैं। कहा जाता है कि भगवान् विष्णु ने अपने सिर से दो बाल तोड़े—एक श्वेत तथा दूसरा श्याम। ये दोनों बाल यदुवंशी रोहिणी तथा देवकी के गर्भों में प्रविष्ट हुए।

रोहिणी से बलराम तथा देवकी से कृष्ण प्रकट हुए। इस प्रकार बलराम पहले बाल से और कृष्ण दूसरे बाल से प्रकट हुए। इसकी भी भविष्यवाणी की गई थी कि देवताओं के शत्रु सभी असुरों का विनाश भगवान् विष्णु के श्वेत तथा श्याम स्वांशों के द्वारा होगा तथा पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् प्रकट होकर अद्भुत कार्य करेंगे। इस सन्दर्भ में *लघु भागवतामृत* के *कृष्णामृत* अध्याय (श्लोक १५६-१६४) को देखना चाहिए। श्रील रूप गोस्वामी ने केश अवतार के इस तर्क का खंडन किया है, जिसकी पुष्टि श्री बलदेव विद्याभूषण की टीका में हुई है। इस विषय की अधिक व्याख्या *कृष्ण-सन्दर्भ* (अनुच्छेद २९) तथा श्रील जीव गोस्वामी की टीका *सर्व-संवादिनि* में प्राप्त होती है।

তবে সনাতন প্রভুর চরণে ধরিয়া ।
নিবেদন করে দন্তে তৃণ-গুচ্ছ লঞা ॥ ১১৯ ॥

তবে সনাতন প্রভুর চরণে ধরিয়া ।
নিবেদন করে দন্তে তৃণ-গুচ্ছ লঞা ॥ ১১৯ ॥

তবে—उस समय; **সনাতন**—सनातन गोस्वामी; **প্রভুর**—श्री चैतन्य महाप्रभु के; **চরণে ধরিয়া**—चरणकमल पकड़कर; **নিবেদন করে**—निवेदन करने लगे; **দন্তে**—दाँत में; **তৃণ-গুচ্ছ**—तिनकों का गुच्छा; **লঞা**—रखकर।

अनुवाद

तब सनातन गोस्वामी अपने आपको तिनके से भी तुच्छ मानकर प्रतीकात्मक रूप से अपने मुँह में कुछ तिनके दबाकर श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमलों पर गिर पड़े और उनके चरण पकड़कर उनसे निम्नलिखित निवेदन किया।

"নীচ-জাতি, নীচ-সেবী, মুঞি—সুপামর ।
সিদ্ধান্ত শিখাইলা,—যেই ব্রহ্মার অগোচর ॥ ১২০ ॥

"নীচ-জাতি, নীচ-সেবী, মুঞি—সুপামর ।
সিদ্ধান্ত শিখাইলা,—যেই ব্রহ্মার অগোচর ॥ ১২০ ॥

नीच-जाति—नीच जाति; **नीच-सेवी**—नीच लोगों का सेवक; **मुञि**—मैं; **सुपामर**—अत्यन्त पापी; **सिद्धान्त शिखाइला**—आपने सर्वोत्तम सिद्धान्त विस्तारपूर्वक सिखाये; **ग्रेइ**—जो; **ब्रह्मार**—ब्रह्मा की; **अगोचर**—पहुँच से परे हैं।

अनुवाद

सनातन गोस्वामी ने कहा, "हे प्रभु, मैं अत्यन्त नीच जाति में उत्पन्न व्यक्ति हूँ। वस्तुत: मैं तो नीच जाति में उत्पन्न लोगों का सेवक हूँ; अत: मैं अत्यन्त नीच हूँ। तो भी आपने मुझे वे सिद्धान्त सिखलाये हैं, जो ब्रह्मा तक को ज्ञात नहीं हैं।

तुमि ये कहिला, एई सिद्धान्तामृत-सिन्धु ।
मोर मन छुञिते नारे इहार एक-विन्दु ॥ १२१ ॥

तुमि ग्रे कहिला, एइ सिद्धान्तामृत-सिन्धु ।
मोर मन छुइँते नारे इहार एक-बिन्दु ॥ १२१ ॥

तुमि ग्रे—आपने जो; **कहिला**—बताए हैं; **एइ**—ये; **सिद्धान्त-अमृत-सिन्धु**—सिद्धान्तों के अमृत का समुद्र; **मोर मन**—मेरा मन; **छुडिते**—स्पर्श करने में; **नारे**—समर्थ नहीं है; **इहार**—इसकी; **एक-बिन्दु**—एक बूँद भी।

अनुवाद

"आपने जो सिद्धान्त मुझसे कहे हैं, वे सत्यरूपी अमृत के सागर हैं। मेरा मन उस सागर की एक बूँद को भी छू पाने में समर्थ नहीं है।

पङ्गु नाचाइते यदि हय तोमार मन ।
वर देह' मोर माथे धरिया चरण ॥ १२२ ॥

पङ्गु नाचाइते ग्रदि हय तोमार मन ।
वर देह' मोर माथे धरिया चरण ॥ १२२ ॥

पङ्गु—लँगड़े व्यक्ति को; **नाचाइते**—नचाने की; **ग्रदि**—यदि; **हय**—है; **तोमार मन**—आपकी इच्छा; **वर**—एक वरदान; **देह'**—कृपया दीजिये; **मोर माथे**—मेरे सिर पर; **धरिया**—रखकर; **चरण**—अपने चरणकमल।

अनुवाद

"यदि आप मुझ जैसे लंगड़े व्यक्ति को नचाना चाहते हैं, तो फिर

आप मेरे सिर पर अपने चरणकमल रखकर मुझे अपना दिव्य आशीर्वाद दें।

'मुञि ये शिखालुँ तोरे स्फुरुक सकल' ।
एइ तोमार वर हैते हबे मोर बल'' ॥ १२३॥

'मुञि ये शिखालुँ तोरे स्फुरुक सकल' ।
एइ तोमार वर हैते हबे मोर बल" ॥ १२३॥

मुञि—मैंने; **ये**—जो कुछ; **शिखालुँ**—सिखाया है; **तोरे**—तुमको; **स्फुरुक सकल**—इसे स्फुरित होने दो; **एइ**—यह; **तोमार वर**—आपके वरदान; **हैते**—से; **हबे**—होगी; **मोर बल**—मेरी क्षमता।

अनुवाद

"क्या अब आप कृपा करके मुझसे कहेंगे कि, 'जो कुछ मैंने तुमसे कहा है, वह सब तुम में पूरी तरह से प्रकट हो जाए।' मुझे ऐसा वरदान देकर आप मुझे वह शक्ति प्रदान करेंगे, जिससे मैं इसका वर्णन कर सकूँ।"

तबे महाप्रभु ताँर शिरे धरि' करे ।
वर दिला—'एइ सब स्फुरुक तोमारे' ॥ १२४॥

तबे महाप्रभु ताँर शिरे धरि' करे ।
वर दिला—'एइ सब स्फुरुक तोमारे' ॥ १२४॥

तबे—इसके बाद; **महाप्रभु**—श्री चैतन्य महाप्रभु ने; **ताँर**—सनातन गोस्वामी के; **शिरे**—सिर पर; **धरि'**—रखकर; **करे**—हाथ द्वारा; **वर दिला**—वरदान किया; **एइ सब**—ये सभी; **स्फुरुक तोमारे**—तुम्हें स्फुरित हो जाये।

अनुवाद

तब श्री चैतन्य महाप्रभु ने सनातन गोस्वामी के सिर पर अपना हाथ रखा और यह वर दिया, "ये सारे उपदेश तुम में प्रकट हो जाएँ।"

सङ्क्षेपे कहिलुँ—'प्रेम'-प्रयोजन-संवाद ।
विस्तारि' कहन ना याय प्रभुर प्रसाद ॥ १२५॥

सङ्क्षेपे कहिलुँ—'प्रेम'-प्रयोजन-संवाद ।
विस्तारि' कहन ना ग्राय प्रभुर प्रसाद ॥ १२५ ॥

सङ्क्षेपे—संक्षेप में; **कहिलुँ**—मैंने बताया है; **प्रेम-प्रयोजन-संवाद**—जीवन के परम लक्ष्य, भगवत्प्रेम का संवाद; **विस्तारि'**—विस्तारपूर्वक; **कहन**—वर्णन; **ना ग्राय**—सम्भव नहीं; **प्रभुर प्रसाद**—श्री चैतन्य महाप्रभु का वरदान।

अनुवाद

इस तरह मैंने जीवन के चरम लक्ष्य, भगवत्प्रेम के संवाद का संक्षिप्त वर्णन किया है। श्री चैतन्य महाप्रभु की कृपा का वर्णन विस्तार से नहीं किया जा सकता।

प्रभुर उपदेशामृत शुने येई जन ।
अचिराञ्चिलये ताँरे कृष्ण-प्रेम-धन ॥ १२६ ॥

प्रभुर उपदेशामृत शुने ग्रेइ जन ।
अचिरात्मिलये ताँरे कृष्ण-प्रेम-धन ॥ १२६ ॥

प्रभुर—श्री चैतन्य महाप्रभु के; **उपदेश-अमृत**—उपदेशों का अमृत; **शुने**—सुनता है; **ग्रेइ जन**—जो भी व्यक्ति; **अचिरात्**—शीघ्र ही; **मिलये**—मिलता है; **ताँरे**—उसे; **कृष्ण-प्रेम-धन**—कृष्ण-प्रेम का खजाना।

अनुवाद

जो कोई भी महाप्रभु द्वारा सनातन गोस्वामी को दिये गये इन उपदेशों को सुनता है, वह शीघ्र ही कृष्ण-प्रेम का अनुभव करने लगता है।

श्री-रूप-रघुनाथ-पदे यार आश ।
चैतन्य-चरितामृत कहे कृष्णदास ॥ १२७ ॥

श्री-रूप-रघुनाथ-पदे ग्रार आश ।
चैतन्य-चरितामृत कहे कृष्णदास ॥ १२७ ॥

श्री-रूप—श्रील रूप गोस्वामी के; **रघुनाथ**—श्रील रघुनाथ दास गोस्वामी के; **पदे**—चरणकमलों में; **ग्रार**—जिनकी; **आश**—आशा; **चैतन्य-चरितामृत**—*चैतन्य चरितामृत* नामक ग्रन्थ; **कहे**—वर्णन करते हैं; **कृष्णदास**—श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी।

अनुवाद

श्री रूप तथा श्री रघुनाथ के चरणकमलों की वन्दना करते हुए और उनकी कृपा की सदैव आकांक्षा करते हुए, मैं कृष्णदास उनके चरणचिह्नों पर चलकर श्रीचैतन्य-चरितामृत का वर्णन कर रहा हूँ।

इस प्रकार श्रीचैतन्य-चरितामृत की मध्यलीला के भगवत्प्रेम शीर्षक तेईसवें अध्याय का भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुआ ।